प्रभंजन चरित्र

आचार्य वसुनन्दी मुनि

प्रस्तुति : निर्ग्रंथ ग्रन्थमाला समिति

संस्करण : प्रथम - 1500 प्रतियाँ, सन् 2004
@ सर्वाधिकार सुरक्षित : प्रकाशकाधीन
I.S.B.N. No.: 81-872880-86
द्वितीय 3000 सन् 2015, जयपुर चातुर्मास

प.पू. श्वेतपिच्छाचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज
के 53वें मुनि दीक्षा दिवस (25 जुलाई 2015)
के अवसर पर ज्ञानवर्द्धन हेतु प्रकाशित
ग्रंथांक-16

ग्रंथ : प्रभंजन चरित्र
ग्रंथकार : कविवर ब्रह्मराय
पावन आशीष : परम पूज्य राष्ट्रसंत श्वेतपिच्छाचार्य श्री 108 विद्यानन्द जी मुनिराज
सम्पादक : आचार्य वसुनन्दी मुनि
प्रकाशक : निर्ग्रंथ ग्रन्थमाला
e-mail : nirgranthmala@rediffmail.com
पुण्यार्जक : श्री नरेन्द्र जैन, अध्यक्ष, देहरा, तिजारा
मूल्य : स्वाध्याय (सहयोग राशि 15/-)
ग्रंथ प्राप्ति स्थान : 1. श्री जम्बूस्वामी तपोस्थली, बौलखेड़ा, कामां (राज.)
2. श्री दिगम्बर जैन ऋषभदेव मंदिर,
ऋषभपुरी, टूण्डला चौराहा, टूण्डला-जिला फिरोजाबाद (उ.प्र.)
3. आचार्य श्री वसुनंदी साहित्य सदन, जय शांतिसागर निकेतन, मण्डोला,
गाजियाबाद (उ.प्र.)
4. सरस्वती प्रिन्टर्स एण्ड स्टेशनर्स, चांदी की टकसाल, जयपुर
टाइप व मुद्रक : बसन्त कुमार जैन, सरस्वती प्रिन्टर्स एण्ड स्टेशनर्स
बैंक के नीचे, हवा महल बाजार, आमेर रोड, चांदी की टकसाल, जयपुर
मो.: 8561023344, E-mail : jainbasant02@gmail.com

प्राक्कथन

श्री जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रणीत जिनागम चार अनुयोगों में विभक्त है, जिस प्रकार गाय के चारों स्तनों में दूध समान वर्ण, शक्ति, स्वाद, स्पर्श व उपयोगिता से युक्त होता है उसी प्रकार पुष्प की चार पांखुड़ी की तरह ही प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग एवं द्रव्यानुयोग ये जिनवाणी के चार अनुयोग है। जिनवाणी का प्रत्येक शब्द प्राणी मात्र का कल्याण करने में समर्थ है, यदि हम उस शब्द का सही अर्थ समझने का प्रयास करें तो जैन दर्शन में सभी कथन सापेक्ष हैं, निरपेक्ष कथन तो अकल्याणकारी ही होता है। जिन वचन ही समस्त भव रोगों के लिए परमौषधि के समान हैं। इन्हीं का (जिन वचनों का) समीचीन आश्रय/ अवलम्बन भव्य जीवों को भव वारिधि से तारने के लिए समुचित व समर्थ नौका के समान है। जिन वचनों की महिमा के बारे में आचार्य भगवन् श्री कुन्दकुन्द स्वामी जी कहते हैं-

जिण वयण मोसह मिणं, विसय सुह विरेयणं अमिद भूयं।
जर मरण वाहि हरणं, खय करणं सव्व दुक्खाणं।।7।।द.पा.

जिनेन्द्र भगवान के वचन रूपी यह औषधि विषय सुखों का विरेचन करने वाली तथा अमृतभूत है। जन्म, जरा, मृत्यु रूपी रोगों की परिहास एवं सर्वदुखों का क्षय करने वाली है। उसे परमौषधि का सेवन हमें अपनी पात्रका के अनुसार करना है। जिस प्रकार कुशल वैद्य रोगी की वय, रोग, शक्ति, प्रकृति, मौसम का प्रभाव देखकर, औषधि की मात्रा, सेवन की विधि व पथ्यापथ्य की बातों का समीचीन विचार करते ही रोगी को औषधि का सेवन कराया है। उसी प्रकार परम पूज्य श्री दिगम्बर जैनाचार्य रूपी कुशल

वैद्यो के निर्देशानुसार हम रूपी को भी क्रमश: जिनागम का स्वाध्याय करना है तभी हम जन्म, जरा, मृत्यु जैसे रोगों से मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। यदि हमने कुशल वैद्य के निर्देशों व सुझावों की उपेक्षा करके स्वेच्छाचारिता पूर्वक (मनमाने ढंग से) औषधि का सेवन किया तो हो सकता है रोग नष्ट होने की बजाय बढ़ भी सकता है तथा साथ में अन्य भी कई रोग पैदा हो सकते हैं। अत: जिनागम (जिनेन्द्र भगवान या आप्त प्रणीत, गणधर भगवन्तों द्वारा संग्रहित एवं दिगम्बर मुनियों द्वारा लिपिबद्ध शास्त्रों को ही जिनागम कहते हैं) का प्रत्येक, अक्षर, शब्द, पद, वाक्य श्रद्धान के योग्य है। जिनवाणी का कोई भी अंश/अंग उपेक्षणीय नहीं है। आचार्य श्री शिवकोटि महाराज कहते हैं –

पदमक्खरं च एक्कंपि जो ण रोचेदि सुत्त णिदिट्ठं।
सेसं रोचंतो वि हू मिच्छा दिट्ठी मुणेयव्वा।।मूलाराधना

जो जिनागम में प्रणीत एक भी अक्षर, शब्द, वाक्य या गाथा की श्रद्धा न करे और समस्त आगम को माने या उस पर श्रद्धा करे तो भी वह मिथ्या दृष्टि है अत: कोई भी अनुयोग कमी अकल्याणकारी नहीं होता अपनी पात्रता के अनुसार सभी का स्वाध्याय करना चाहिए।

प्रथमानुयोग के ग्रंथों में त्रेसठ शलाका के महापुरुषों का जीवन चरित्र दर्शाया गया है 'उन्होंने जीवन में जो शुभाशुभ क्रियायें की, पुण्य पाप का बंध किया उसका क्या फल प्राप्त हुआ' का वर्णन है एवं कर्म सिद्धान्त को प्रत्यक्ष दूरदर्शन (चलचित्र) पर चल रहे चित्रों की तरह दिखाया गया है। प्रथमानुयोग के शास्त्रों का प्रारम्भिक दशा में (स्वाध्याय के क्रम में) स्वाध्याय अत्यन्त आवश्यक है। इस अनुयोग का स्वाध्याय करने से पापों से भीति, जिनेन्द्र भगवान में प्रीति, सच्चे देव, शास्त्र, गुरु व जिनधर्म में अनुराग व रुचि, संयम प्राप्ति की प्रबल भावना, संसार शरीर भोगों से उदासीनता/विरक्ति, रत्नत्रय में अनुरक्ति की भावना जागृत होती है। आचार्य भगवन् समन्तभद्र स्वामी जी कहते हैं –

प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यम्।
बोधि समाधि निधानं बोधति बोधः समीचीनं।।43।।र.श्रा.

प्रथमानुयोग पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादक है। पुराण/पौराणिक पुरुषों के पुण्य चरित्र का कथन करता है यह बोधि (रत्नत्रय–सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र) एवं समाधि (निर्विकल्प ध्यान की अवस्था–जो अभेद रत्नत्रय के प्राप्त होने पर शुद्धोपयोगी मुनि के आत्मा में लीन होने पर प्राप्त होती है जिसे आत्मानुभूति भी कहते हैं इसका प्रारंभ सातवें अप्रमत्त गुणस्थान से होता है इसके पूर्व शुद्ध आत्मा की प्रत्यक्षानुभूति कदापि संभव नहीं है अर्थात् असंभव है) का खजाना है ऐसे समीचीन बोध को देने वाला प्रथमानुयोग/कथानक है अपितु उनमें श्रावक धर्म व मुनि धर्म का कथन करने वाला चरणानुयोग भी उपलब्ध होता है। गुणस्थानों, मार्गणा स्थानों, दस प्रकार के करणों एवं त्रिलोक संबंधी कथन होने से करणानुयोग, जीव की स्थिति तथा जीवादि द्रव्यों के स्वभाव, शुद्ध गुण, पर्याय का कथन भी प्रथमानुयोग में मिलने से द्रव्यानुयोग भी दृष्टिगोचर होता है। प्रथमानुयोग में संक्षेप रूप से चारों अनुयोगों का कथन मिल जाता है ऐसा कहना भी कोई अतिश्योक्ति नहीं है।

स्वाध्याय से विमुख या एकान्तवाद की पंक में लिप्त जो अज्ञ महानुभाव प्रथमानुयोग को कथा कहानी कहकर उसकी उपेक्षा करते हैं वे अपने जीवन के साथ खिलवाड़ तो करते ही हैं साथ ही जिनागम की अवहेलना कर अन्य भव्य जीवों के पतन में भी कारणरूप से सहभागी हो जाते हैं।

अतः मन्द कषायी, भद्र परिणामी, प्रशम, संवेग भावयुक्त उन समस्त स्वाध्याय प्रेमी, सत् श्रद्धालु धर्मस्नेही, आत्महितेच्छुक, पाप भीरु महानुभावों के लिए विनम्र सुझाव/निर्देश है कि वे जिनेन्द्र भगवान की वाणी का अपलाप करके पाप के भागीदार न बने, अपितु समीचीन शास्त्रों का समीचीन विधि से स्वाध्याय करके स्वपर के कल्याण में सहयोगी बनें। सम्यक्ज्ञान रूपी नेत्र के बिना जीव कभी भी अपना कल्याण.

नहीं कर सकता है अत: यथाशक्ति नित्य विनय पूर्वक विशुद्ध भावों से स्वाध्याय करने का समीचीन प्रयास करें।

इस ग्रंथ के पुन: प्रकाशन का उद्देश्य यही है कि अधिक से अधिक भव्य जीव स्वाध्याय के लिए प्रेरित हो। वर्तमान में स्वाध्याय की परम्परा मंद होती चली जा रही है क्योंकि जो स्वाध्याय करना चाहते हैं वे (प्रारम्भिक स्वाध्यायार्थी) बड़े-ग्रंथों को देखकर ही अपना साहस खो बैठते हैं तथा प्रथमानुयोग के ग्रंथ सर्वत्र सहज सुलभ भी नहीं हो पा रहे हैं। अधिकांशत: एकान्तवाद से दूषित साहित्य दृष्टिगोचर हो रहा है जिससे प्राणी मिथ्यात्व रूपी अंधकार में भटकते हुए भव भ्रमण की वृद्धि ही कर.रहे हैं अत: प्रथमानुयोग के लघु शासत्रों का प्रकाशन इस युग की आवश्यकता की पूर्ति में सहयोग सिद्ध होगा।

इस ग्रंथ के सम्पादन में मुझे अल्पज्ञ साधक के द्वारा जो त्रुटि रह गई हो तो सकल संयमी विज्ञजन मुझे क्षमा करते हुए भूल सुधारने हेतु संकेत देने का कष्ट करें, इसमें जो त्रुटि हैं वे सब मेरी अल्पज्ञता की द्योतक हैं तथा जो भी अच्छाई हैं वे सब परम पूज्य आचार्य भगवन्तों का सुप्रसाद ही हैं। अत: गुणग्राही बन कर गुण ग्रहण करें।

"अलमति विस्तरेण"

ॐ ह्रीं नम:

टूंडला (उ.प्र.)
3.12.2000

– कश्चिदल्पज्ञ श्रमण:
जिन चरण चञ्चरीक

प.पू. चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांति सागर जी महाराज के 1914 से 1955 तक (42) चातुर्मासों की सूची

सन्	ग्राम	किस अवस्था में	जिला
1914	उत्तूर ग्राम	छुल्लक दीक्षा	कागल समीप
1914	कागल ग्राम	छुल्लक अवस्था में	कोल्हापुर
1915	कोगनोली ग्राम	छुल्लक अवस्था में	बेलगांव
1916	कुम्भोज ग्राम	छुल्लक अवस्था में	कोल्हापुर
1917	जैन वाड़ी ग्राम	छुल्लक अवस्था में	बेलगांव
1917	गिरनार जी क्षेत्र	ऐलक दीक्षा	उत्तर प्रान्त
1918	समडोली ग्राम	ऐलक अवस्था में	सांगली
1919	नसलापुर ग्राम	ऐलक अवस्था में	बेलगांव (रायबाग)
1920	यरनाल ग्राम	मुनि दीक्षा	बेलगांव (अथणी)
1920	कोगनोली ग्राम	मुनि अवस्था में	बेलगांव
1921	नसलापुर ग्राम	मुनि अवस्था में	बेलगांव
1922	ऐनापुर ग्राम	मुनि अवस्था में	बेलगांव
1923	कोन्नूर ग्राम	मुनि अवस्था में	बेलगांव
1924	समडोली ग्राम	आचार्य पद	सांगली
1925	कुम्भोज ग्राम	आचार्य अवस्था में	कोल्हापुर
1926	नांदणी ग्राम	आचार्य अवस्था में	शिरोल
1927	बाहुबली क्षेत्र	आचार्य अवस्था में	कोल्हापुर
1928	कटनी नगर	आचार्य अवस्था में	मध्यप्रदेश
1929	ललितपुर	आचार्य अवस्था में	बुन्देलखण्ड
1930	मथुरा	आचार्य अवस्था में	उत्तरप्रदेश
1931	दिल्ली राजधानी	आचार्य अवस्था में	दिल्ली

1932	जयपुर	आचार्य अवस्था में	जयपुर (राज.)
1933	ब्यावर नगर	आचार्य अवस्था में	अजमेर (राज.)
1934	उदयपुर	आचार्य अवस्था में	उदयपुर (राज.)
1935	गोरल	आचार्य अवस्था में	गुजरात
1936	प्रतापगढ़	आचार्य अवस्था में	चित्तौड़गढ़ (राज.)
1937	गजपंथा क्षेत्र	चारित्र चक्रवर्ती पद दिया गया	नासिक
1938	बारामती नगर	चा.च. आचार्य अवस्था में	पुणे
1939	पाणागढ़ क्षेत्र	चा.च. आचार्य अवस्था में	बड़ौदा
1940	गोरल ग्राम	चा.च. आचार्य अवस्था में	गुजरात
1941	अकलूज ग्राम	चा.च. आचार्य अवस्था में	सोलापुर
1942	कोरोची ग्राम	चा.च. आचार्य अवस्था में	कोल्हापुर
1943	डिग्रज ग्राम	चा.च. आचार्य अवस्था में	सांगली
1944	कुन्थलगिरी क्षेत्र	चा.च. आचार्य अवस्था में	उस्मानाबाद
1945	फलटण नगर	चा.च. आचार्य अवस्था में	सतारा
1946	कवलगाणा	चा.च. आचार्य अवस्था में	नासिक
1947	सोलापुर	चा.च. आचार्य अवस्था में	सोलापुर
1948	फलटण	चा.च. आचार्य अवस्था में	सतारा
1949	कवलगाणा	चा.च. आचार्य अवस्था में	नासिक
1950	गजपंथा क्षेत्र	चा.च. आचार्य अवस्था में	नासिक
1951	वारामती नगर	चा.च. आचार्य अवस्था में	पुणे
1952	लोणंद नगर	चा.च. आचार्य अवस्था में	सतारा
1953	कुन्थलगिरी क्षेत्र	चा.च. आचार्य अवस्था में	उस्मानाबाद
1954	फलटण नगर	चा.च. आचार्य अवस्था में	सतारा
1955	कुन्थलगिरी क्षेत्र	चा.च. आचार्य अवस्था में	उस्मानाबाद
1955	कुन्थलगिरी क्षेत्र	समाधि	उस्मानाबाद

आद्य वक्तव्य

– आचार्य श्री वसुनन्दी जी महाराज

तीन लोक में सारभूत अवस्था वीतरागता व केवलज्ञान की है किन्तु उसकी प्राप्ति बिना संयम साधना के असंभव है और यथार्थ संयम की साधना भी बिना वैराग्य के हो नहीं सकती। वैराग्य होने पर ही जीव स्वकीय विभूति को प्राप्त कर पाता है। वैराग्य की सिद्धि सम्यक् ज्ञान के बिना हो नहीं सकती सम्यक् ज्ञान सम्यक् दर्शन का अविनाभावी गुण है अत: आचार्य भगवन्तों ने संसार के यथार्थ स्वरूप को दर्शाने का प्रयास किया। जब तक व्यक्ति यथार्थता को नहीं जान पाता तब तक मिथ्यात्व के गहनतम अंधकार में ही भ्रमण करता रहता है। आचार्य श्री सकल कीर्ति महाराज ने मोक्ष को प्रापत करने का सूत्र इस प्रकार कहा है–

वैराग्य सारं भज सर्वकालं, निर्ग्रंथ संग कुरु मुक्ति बीजं।
विमुञ्च संगं कुजनेषु मित्रं, देवार्चनं त्वं कुरु वीतरागे।।

अर्थात् प्रत्येक काल में संसार के सार भूत वैराग्य का ही सेवन करो, मुक्ति के बीज स्वरूप निर्ग्रंथ, वीतराग दिगम्बर संतो की संगति करो, दुष्ट अभिप्राय वाले पुरुषों की संगति को बुद्धि पूर्वक छोड़ दो, तथा वीतरागी जिनेन्द्र देव की तुम निरन्तर अर्चना करो। आचार्य श्री उमास्वामी महाराज के द्वारा प्रतिपादित मोक्षमार्ग में आवश्यक सामग्री की प्राप्ति इसी सूत्र वाक्य से होती है। आचार्य श्री उमास्वामी महाराज ने मोक्षमार्ग इस प्रकार बताया है ''सम्यक् दर्शन–ज्ञान–चारित्राणि मोक्षमार्ग:।' सम्यक्रत्न की एकता ही मोक्ष मार्ग है। इस रत्नत्रय की प्राप्ति भी बिना देवपूजा, स्वाध्याय व निर्ग्रंथ गुरु की सेवा के असंभव है।

प्रस्तुत ग्रंथ 'प्रभंजन चरित्र' देखने में तो बहुत छोटा सा ग्रन्थ है किन्तु इसमें वर्णित विषय–संसार, शरीर व भोगों की यथार्थता का प्रतिबोधक है। वैराग्य की शिक्षा जीवंत उदाहरणों द्वारा दी गयी है। स्त्री के स्वभाव के बारे में कोई भी सामान्य व्यक्ति नहीं जान सकता क्योंकि उसकी चेष्टायें प्राय: वक्रता से युक्त होती है, वह मन में कुछ और ही बात सोचती है अथवा चाहती है, वचनों से किसी अन्य का मनोरंजन करती है तथा शरीर से किसी अन्य को संकेत करती है एवं सहवास किसी अन्य के साथ करती है नीतिकारी ने कहा भी है –

''स्त्रियस्य चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं, देवो न जानाति कुतो मनुष्या:।''

स्त्रियों के चरित्र व पुरुष के भाग्य को मनुष्य तो क्या देव भी नहीं जान सकते, भले ही ग्रहों की गति जान लें, भूगर्भ की वस्तु जान लें, सागर की गहराई व पर्वत की ऊंचाई भी नाप लें, अनन्ताकाश को भी जान लें फिर भी स्त्री के हृदय की कुटिलता, गहराई, वंचना को नाप पाना अत्यन्त दुष्कर कार्य है।

प्रस्तुत ग्रन्थ प्रभंजन चारित्र में निम्न विषयों के संबंध में रोचक शैली में प्रकाश डाला है – पुण्य पाप के फल का विशद व्याख्यान, पिता पुत्र का स्नेह, पूर्वभव में बाँधे गये बैर का प्रतिफल, अणुव्रतों व महाव्रतों का महत्व, स्त्री का स्वभाव, पुरुष का विश्वासघात, संसार की दशा, कर्म का विपाक, इन्द्रियों की लोलुपता इत्यादि विषयों का विस्तार से वर्णन किया गया।

प्रस्तुत ग्रंथ के प्रकाशन में सहयोगी संघस्थ साधक सकल संयमी एवं त्यागीव्रतियों को सुसमाधिरस्तु आशीर्वाद। अपने समीचीन द्रव्य का सदुपयोग करने वाले सुधी श्रावकगणों को धर्मवृद्धि शुभाशीर्वाद।

इस ग्रंथ के सम्पादन में मुझ अल्पज्ञ/छद्मस्थ श्रमण द्वारा जो भी त्रुटि रह गई हो तो अभेद रत्नत्रयधारी सकल संयमी विज्ञजन मुझे क्षमा करते हुए सुधार हेतु संकेत देने का अनुग्रह करें तथा गुणग्राही सत् श्रद्धालु विनय व शिष्टाचार से युक्त पाठकगण समीचीन अर्थ को ग्रहण करते हुए आत्मकल्याण की पुनीत भावना के साथ ग्रन्थराज का आद्योपांत स्वाध्याय कर अपने सम्यग्ज्ञान व धर्म ध्यान की वृद्धि करते हुए सम्यक् दर्शन व सम्यक् चारित्र को निर्मल व सुदृढ़ बनायें, ऐसी आपके प्रति मेरी मंगल भावनाएँ हैं।

''अलमति विस्तरेण''

''पुण्यं वर्द्धताम्'' **''सर्वेषां मंगलं भवतु''** **''धर्मो वर्द्धताम्''**

श्री शुभमिती भाद्रपद कृष्ण–5
गुरुवार वासरे
वी.नि.सं.–2541
3 सितम्बर, 2015

संयमानुरक्त; पापभीरू
कश्चिदल्पज्ञ श्रमण: जिनचरण चेचरीक
ॐ ह्रीं नम:

श्री आदिनाथ भवन, मीरा मार्ग,
मानसरोवर, जयपुर (राज.)

ॐ

प्रभंजन चरित्र

प्रथम सर्ग

घातिकर्म रूप बादलों के उड़ाने को प्रभंजन (वायु के समान जो श्री वर्द्धमान स्वामी हैं, उनको नमस्कार कर मैं अपनी बुद्धि के अनुसार प्रभंजन गुरू के चरित्र को कहता हूँ।

जम्बूद्वीप के मण्डनरूप भरतक्षेत्र में पूर्वदेश नामक देश है। इस देश में तिलक के समान पवित्र पुण्यपुर नगर हैं। पुण्यपुर के राजा पूर्णभद्र थे। इनका यश पूरे चाँद के समान निर्मल और दिगन्तव्यापी था। पूर्णभद्र की रानी का नाम भामा और पुत्र का नाम भानु था। एक समय प्रमद नामक वनपाल राजा के पास पहुँचा और सब ऋतुओं के फलफूल उनको भेंट देकर बोला – "देवों के देव! उद्यान में आज बहुत से मुनिजनों के साथ-साथ श्री वर्द्धमान मुनीश्वर पधारे हैं। देवों के समुदाय आ-आकर उनकी वन्दना और स्तुति करते हैं।" वनपाल के मुख से यह शुभ समाचार सुनकर राजा ने उसे बहुत धन दिया और आप स्वयं एक मनोहर हाथी पर सवार हो नगर से बाहर निकले। जब उद्यान पास आ गया तब हाथी से उतर इधर-उधर ध्यानारूढ़ मुनियों को देखते भालते वन के भीतर को गये। वहाँ किसी प्रदेश में बैठे हुए एक मुनि को देखा। इनका नाम प्रभंजन था। प्रभंजन का शरीर तप से बहुत कृश हो रहा था, तो भी कल्लोल रहित समुद्र की तरह हलन चलन क्रिया से रहित था, दीप्त, तप्त और महाघोर तप के तेज से तेजवाला था। इनका मन, बाह्य अभ्यन्तर परिग्रह से बिल्कुल अलिप्त था। ऐसे प्रभंजन मुनिराज को देखकर पूर्णभद्र महाराज बहुत संतुष्ट हुए। सच है कि भव्यजीवों

को मुनीश्वरों के दर्शनमात्र से ही हर्ष होता है फिर यदि उनके साथ कोई बन्धुभाव हो तब तो कहना ही क्या है? राजा उन मुनि को नमस्कार कर आगे गये। वहाँ एक अशोक वृक्ष के नीचे बैठे हुये श्री वर्द्धमान मुनिराज को देखा और उन्हें नमस्कार किया।

उनसे सात तत्त्वों का निर्दोष श्रद्धान कर दो प्रकार के धर्म का श्रवण किया। बाद में प्रभंजन मुनि के विषय में पूछा कि भगवन्! इनका नाम क्या है? इनके तप का कारण क्या है? और इनके ऊपर मेरे हृदय में जो भारी स्नेह हो रहा है इसका कारण क्या है?

राजा के इन प्रश्नों को सुन, मुनिराज ने उत्तर दिया कि इन्होंने काम, क्रोध आदि छः शत्रुओं को प्रभंजन (विनाश) कर डाला है, इसलिये इनको प्रभंजन कहते हैं। अब आगे क्रम से मैं इनके तप का कारण बताता हूँ तुम सावधान हो सुनो।

कथा का प्रारम्भ – जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में शुभ देश है। इस देश में भंभापुर नगर है। इस नगर की खाई पर हमेशा हंस कल्लोलें किया करते हैं और खाई के मध्यभाग की शोभा देखने को उत्सुक रहते हैं। भंभापुर का कोट अपने ऊँचे-2 दरवाजों से सुशोभित है। इस नगर में बड़े-2 विशाल जैन मंदिरों की कई एक कतारे-पंक्तियाँ बनी हुई हैं जो अपनी ध्वजाओं से, बगियों से, वापिकाओं से और छोटी-2 तलाइयों से ऐसी मालूम होती हैं मानों ये सब अकृत्रिम ही हैं-इनको किसी ने बनाया ही नहीं। यहाँ के महलों की कतारें तो ऐसी मालूम होती हैं मानो ये रत्नत्रय को धारण करने वाली जगत द्वारा मान्या, मनोहारिणी और शुद्धमनसा महारानियाँ ही हैं, क्योंकि इनमें भी तो तीन प्रकार के (हरे पीले लाल) रत्न लगे हुये हैं। ये भी तो जगत कर मान्या तथा जगत के मन को हरने वाली हैं और इनमें भी छोटे-2 मानस (तालाब) बने हुये हैं इन्हीं गुणों से ये (महलों की पंक्तियाँ) अपने इन गुणों वाले निवासियों की बराबरी करती हैं। इस नगर के महलों में जड़े हुये रत्नों की कान्ति के मारे यहाँ के लोगों को रात-दिन का भेद ही नहीं जान पड़ता। इसलिये वे अपनी इच्छा से सूरज को चाँद और चाँद को सूरज कह दिया करते हैं। यहाँ के राजा देवसेन थे। इनका यशरूपी धन पूर्ण चाँद की तरह निर्मल था। देवसेन नीति के अच्छे ज्ञाता थे, इसीलिये इनकी

प्रजा हमेशा अमन चैन से रहा करती थी। इनकी महारानी का नाम जयावती था। जयावती काम की रति के समतुल्य थी, सती और व्रतनिष्ठा थी, इसके विषय में और अधिक क्या कहें, यह इन्द्र की इन्द्रानी से किसी बात में भी कम न थीं। देवसेन और जयावती के दो पुत्ररत्न थे। एक प्रवसरसेन दूसरा प्रभंजन। ये दोनों कुमार अतीव रूपशाली थे। इनका रूप तपाये हुये सोने के समान था। सज्जनों में प्रवर प्रवरसेन का पाणिग्रहण (विवाह) तो वसुंधरा के साथ हुआ था और प्रभंजन का सर्वगुण सम्पन्ना पृथिवी के साथ। वसुंधरा ने एक पुत्र को जन्म दिया जो बहुत ऋजु-सीधासाधा था। इसलिये उसके पिता प्रवरसेन ने उसका ऋजु नाम रखा एवं पृथिवी के भी एक पुत्र पैदा हुआ। वह भी बहुत सरल-सीधे चाल चलन का था। इसलिये उसके पिता प्रभंजन ने उसका सरल नाम रखा। कुछ काल में जब महाराज देवसेन विषयभोगों से विरक्त हो गये तब उन्होंने अपने दोनों पुत्रों को बुलाया और प्रवरसेन को वेणातट पुर का तथा प्रभंजन को भंभापुर का राजा बना दिया। बाद में देवसेन वन को चले गये और वहाँ मुनिगुप्त नामक मुनिराज से दीक्षा ले ली। मुनिगुप्त के पास उन्होंने घोर तप किया और आयु के अन्त में मरण कर नवमें शुक्र स्वर्ग में देव पद पाया। एक समय प्रवरसेन के शत्रु ने जब प्रवरसेन को बहुत कष्ट पहुँचाया, इससे समान भूतल को भी कष्ट हुआ तब प्रवरसेन ये सोचकर कि "निःसहाय पुरुषों की अभीष्ट-सिद्धि नहीं होती"। अपने छोटे भाई प्रभंजन को एक पत्र लिख भेजा और आप शत्रु के जीतने को शत्रु की ओर चल पड़े। प्रभंजन भी अपने बड़े भाई का पत्र पाते ही उनकी सहायता को बहुत से प्रबल सामन्तों की सेना को साथ लेकर संग्राम-स्थल की ओर चल पड़े। कुछ समय में संग्राम-भूमि में पहुँच गये। वहाँ उन्होंने शत्रु के साथ खूब घमासान युद्ध किया और थोड़ी ही देर में शत्रु को उसके छोटे भाई सहित बाँध लिया और ले जाकर दोनों शत्रुओं को प्रवरसेन के सामने खड़ा कर दिया। उन दोनों ने प्रवरसेन को नमस्कार किया। प्रवरसेन ने उन रिपुकाल और महाकाल को नमते हुए देखकर उनके ऊपर जो क्रोधभाव था उसे बिल्कुल छोड़ दिया। सच है - सज्जनों का क्रोध जबतक शत्रु नम्र न हो तभी तक रहता है। बाद में उन दोनों को भी छोड़ दिया। वे अपने स्वामी प्रवरसेन की आज्ञा को स्वीकार कर चले गये। शत्रु को वश में कर प्रवरसेन अपने छोटे भाई

सहित घर को लौट आये और वहाँ सुख से काल व्यतीत करने लगे।

एक समय प्रभंजन राजा की रानी पृथिवीदेवी की दृष्टि कुमति मंत्री के ऊपर पड़ी। उसको देखकर रानी की कामाग्नि जल उंठी। पृथिवी ने कुमति को बुलाया और उससे अपने मन का सब हाल कह दिया। कुमति ने भी उसके कहने को मान लिया और वह उसके साथ काममोग भोगता हुआ सुख से रहने लगा। जब रानी ने सुना कि प्रभंजन महाराज घर आने वाले हैं तब उस पापिनी ने रात के समय कुमति से कहा– तुम सरल को मार डालो, क्योंकि यह हम लोगों के मनोरथ की सिद्धि में बाधक हो रहा है तथा बहुत सा धन भी साथ लेकर यहाँ से हम दोनों कहीं दूसरी जगह चलें। कुमति ने रानी का कहना सब मान लिया। एक दिन रानी सरल को देखकर जब रोने लग गई तब सरल–हृदय सरल ने पूछा–माता! तुम रोती क्यों हो? रानी ने उत्तर में उससे अपना सब वृत्तान्त जैसा का तैसा कह दिया। सुनते ही सरल एक शिल्पी के यहाँ गया और उससे अपने सरीखा एक पुतला बनवा लाया तथा माता के कृत्यों को देखने की इच्छा से उसको अपनी शय्या पर लिटा आया। रात के समय माता आई उसने उस पूतले के खण्ड–2 कर दिये तथा यह समझ कर कि पुत्र तो मर गया है अब और कोई विघ्न नहीं है, उसने कुमति को बुलाया और उसे वह साथ लेकर घर से बाहर निकल गई, थोड़े ही समय में वे दोनों उज्जैनी पहुँचे और वहाँ एक मकान लेकर सुख से रहने लगे। इधर सरल भी अपनी माता की चेष्टा देखकर उदास हो गया था, इसलिये अपने एक मित्र की सलाह से वह देशाटन करने को चल पड़ा और बहुत से देश, नदी, पर्वत और वनों में घूमकर विशालापुरी (उज्जैनी) में आ गया। वहाँ किसी उद्यान में स्नान आदि नित्य क्रियाओं से निवृत्त हो, कुछ फलों को खाकर तथा जल पीकर एक वृक्ष के नीचे थकावट दूर करने को सो गया। देवयोग से उसी समय विशालापुरी के श्रीपाल महाराज का देवलोक हो गया था। उनके कोई सन्तान न थी। मंत्री पुरोहित आदि ने बहुत खोज की, पर उन्हें जब कोई पात्र न मिला। तब उन्होंने यह निश्चय किया कि राजहाथी छोड़ा जावे। वह जिसे पकड़ ले, वही पुरुष राजा बना दिया जावे। सबकी सम्मति से कुम्भस्थलपर हाथ फेरने से चंचल है सूंड जिसकी ऐसा नाना भूषणों से विभूषित राजहाथी छोड़ दिया गया। हाथी जब सारे नगर में घूम चुका तब उसी उद्यान

में आया जहाँ सरलकुमार सो रहे थे। उसने आकर सरलकुमार को अभिषिक्त करके ग्रहण कर लिया। उस समय मंत्री आदि सब लोगों ने बड़े हर्ष के साथ कुमार को हाथी पर बैठाया और जयध्वनि के साथ नगर में ले आये।.वहाँ कुमार को छत्र, चमर आदि विभूति से विभूषित कर राजगद्दी पर बैठा दिया। ग्रन्थकार कहते हैं कि किसी का राज्य छूट भी जाये, यदि उसके पुण्य का प्रताप हो तो उसे दूसरा राज्य मिल जाता है। इसलिये भव्यजीवों को चाहिये कि वे जैनमार्ग के अनुयायी हो पूजा, व्रत, नियम आदि सत्कर्मों से पुण्य का उपार्जन करें। इस प्रकार प्रभंजन गुरु के चरित में यशोधर चरित की पीठिका की रचना में सरलकुमार को विशालापुरी का राज्य मिलने का प्रतिपादक प्रथम सर्ग पूर्ण हुआ।

द्वितीय सर्ग

जब काल को दमन करने वाले प्रभंजन महाराज, अपने भाई को सब प्रकार सुखी कर अपनी राजधानी में आये तब वहाँ उन्होंने रानी का सब वृत्तान्त सुना और देखा। वे बहुत दु:खी हुए और सोचने लगे कि इस आत्मा को दूसरों की संगति से कौन-2 से दु:ख नहीं भोगने पड़ते अर्थात् यह सभी दु:खों को भोगता है। स्त्रियाँ संसार का कारण हैं, अनर्थों की जड़ हैं, दया की दुश्मन हैं, एवं लज्जा और अभिमान से दूर रहने वाली हैं। ये अपनी इन्द्रियों और अपने मन को वश में नहीं कर सकतीं, और पुँश्चली (व्यभिचारिणी) होती हैं जब ये स्वार्थ से अन्धी हो जाती हैं तब बिना प्रयोजन के भाई, जमाई, पुत्र, पौत्र, पति, गुरू किसी को भी मारने में नहीं हिचकती हैं। सौ बात की एक बात तो यह है कि संसार में जीवों को जितना कुछ दु:ख होता है वह सब इन्हीं के कारण होता है।

इतना सोच विचार कर प्रभंजन ने अपने बड़े भाई के पुत्र को अपना राज्यभार सौंप दिया और आप घर से बाहर चले गये। हा! पुत्र तुम मुझे छोड़कर कहाँ चले गये, वहाँ तुम जीते जागते हो अथवा काल के दाव में पड़ गये हो! इस प्रकार बाद में विलाप करते हुए वे पृथ्वीतल पर विहार करने लगे। वे सोचने लगे कि मैंने अपने पहले भव में किसी के पुत्र का वियोग किया होगा उसी का फल ऐसा दारुण दु:ख मिला है जो सहा नहीं जाता और लाँघा भी नहीं जाता। अब जब तक मुझे पुत्र का समागम न मिलेगा तब तक चाहे कोई मेरे प्राणों को हरने वाला ही शत्रु क्यों न हो, किसी पर भी वार न करूँगा, अब तो मैं शान्ति से रहूँगा। इस प्रकार अंग, बंग, कलिंग आदि बहुत से देशों में भ्रमण कर वे कुछ समय बाद उसी विशालपुरी (उज्जैनी) में आये जहाँ सरल नामक उन्हीं का पुत्र राजा था। वहाँ सिप्रा नदी के किनारे उन्होंने अपने वस्त्र उतारकर रख दिये और मार्ग की थकावट दूर करने को स्नान करने के लिए वे नदी में उतरते ही थे कि इतने में काकतालीय न्यास से पृथिवी भी जलक्रीड़ा के लिये उसी जगह आ गई। उसने प्रभंजन को नदी में उतरते देख दूर से ही पहिचान लिया और सोचने लगी कि

यह प्रभंजन यहाँ भी आ गया है। अब इस समय क्या उपाय करना उचित है? इस प्रकार सोच विचार कर उस कपटाचारिणी पापिनी ने प्रभंजन को नष्ट करने के लिए उनके वस्त्रों के नीचे अपने आभूषण वगैरह छुपा दिये और रोने चिल्लाने लगी-"हा! मैं लुट गई! हा! मेरे देखते-2 ही मेरे आगे से किसी ने अभी-2 मेरा हार हर लिया। उसकी दासियों ने भी उसकी ही तरह कोलाहल करना शुरू कर दिया। उनके भारी कोलाहल को सुनकर कोटपाल इकट्ठे होकर आ गये और पूछने लगे कि कहो-कहो कहाँ से किसने तुम्हारा क्या ले लिया है? कोटपालों ने इधर उधर हार को खोजा, तब उन्होंने वह हार प्रभंजन के पास पाया, फिर क्या था! उसी वक्त उन अविवेकियों ने प्रभंजन को बाँध लिया और मारने को ले चले। एक पुरुष ने जिसका नाम कलश था इस तरह प्रभंजन को लिये जाते देख कोटपालों को खूब ही डाँटा और वह मिष्टभाषी उसी समय महाराज के पास चला गया। वह महाराज से इस तरह निवेदन करने लगा - "हे दीर्घायुष्क महाराज! आप कल्पकालतक जीवें। आपको शौर्य, सत्य, श्रुत, त्याग आदि संसार भर में उज्वल है। आपका यश पूर्णचन्द्र के बराबर निर्मल है, दिगन्त व्यापी है। आप प्रभंजन के वंशरूपी आकाश को सुशोभित करने के लिये शरद ऋतु के चन्द्रमा के समान हैं। हे श्रीसरल महाराज! आपकी जय हो!" राजा ने हर्ष के साथ कहा-भद्र! जो तुम चाहते हो वही निराकुल हो माँगो। कलश ने दृढ़ता के साथ कहा-राजन्! मैं यही चाहता हूँ कि आप उस चोर को छोड़ देवें। इस बात पर राजा में और कलश में बहुत वाद-विवाद हुआ। अन्त में राजा ने चोर को छोड़ने का हुक्म दे दिया और कहा-जिस चोर को कलश छुड़वा रहा है उस चोर को मेरे सामने ले आओ, देखूँ वह कैसा है? राजा की आज्ञा से चोर उनके सामने लाया गया। राजा ने देखते ही प्रभंजन को और प्रभंजन ने राजा को पहिचान लिया। वे दोनों ही एक दूसरे के कण्ठ से लग-लग कर खूब ही रोये। तत्पश्चात् सरल महाराज उत्कण्ठित हो पिता को अपने घर ले आये। उस समय सरल महाराज ने याचकों को उनकी इच्छा से ही दान दिया-जिसने जो चीज माँगी उसे वही चीज दी, केवल प्रभंजन महाराज का अवलोकन किसी को न दिया-एकटकी दृष्टि से स्वयं ही प्रभंजन को देखते रहे। सरल महाराज ने उस समय कैदियों, पक्षियों, मृगों आदि सभी को छुड़वा दिया और उन्हें उनके बन्धुओं से मिला दिया। प्रभंजन को छुड़वाने वाले कलश को तो इतनी सम्पत्ति दी कि उसे अपने बराबर ही माला-माल कर लिया, किसी भी बात में कम न रखा। सच है-सज्जनों का उपकार

कल्पवृक्ष की तरह फलता है।

अब वे दोनों ही पिता पुत्र एक दूसरे की कथा सुनते हुए सुख से काल बिताने लगे। इसमें संदेह नहीं कि आपत्ति के समय संयोग होना ही सुख का कारण है, फिर यदि वह संयोग पिता पुत्र का हो तब तो कहना ही क्या है? एक दिन प्रभंजन ने अपने पुत्र से कहा-पुत्र! मैंने तुम्हारे वियोग से दु:खी हो नगर देवता को कुछ भेंट देना स्वीकार किया था। वह भेंट मुझे अब देना चाहिये। इसलिये तुम पहिले देवी के गृह की सफाई कराओ, पीछे और कुछ होगा। राजा ने उसी वक्त वहाँ अपने चतुर-2 सिपाहियों को भेज दिया, वे लोग वहाँ पहुँचे और वापिस आकर कहने लगे कि महाराज! वहाँ आठ निर्ग्रन्थ यतीश्वर बैठे हुए हैं। वे किसी तरह भी वहाँ से दूसरी जगह को नहीं जाते हैं। यह सुन प्रभंजन बहुत क्रुद्ध हुए और वे स्वयं वहाँ चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने उन आठ यतीश्वरों को देखा। वे वास्तव में वहीं बैठे थे। उनके दर्शनमात्र से प्रभंजन का मन बिल्कुल शान्त हो गया। सच है, मुनीश्वरों को देखकर सिंह आदि हिंसक जन्तु भी जब शान्त हो जाते हैं तब फिर मनुष्य की तो बात ही क्या है। उन सबको क्रम-क्रम से उनके नाम और उनके तप का कारण पूछने लगे। तब सबमें प्रमुख, अवधिज्ञानी, एक यति ने उत्तर दिया-राजन! मैं क्रम से तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देता हूँ तुम सावधान हो सुनो। हम आठों के नाम श्रीवर्द्धन, जय, मेरु, शुंद, अपराजित, पाल, वज्रायुध और नंद इस प्रकार हैं। हम लोगों के तप के कारण उपाध्यायी, चूडाली, कपिसंगति, बाल हत्या, मंगिका और यशोधर महाराज हैं अर्थात् इनकी कुचेष्टाओं से विरक्त हो हम लोगों ने तप का शरण लिया है। इनमें से किस के लिए कौन कारण हुआ? यह बात आगे स्पष्ट हो जायेगी।

अब मैं (श्रीवर्द्धन) अपने तप का कारण सुनाता हूँ। मैंने बलभीपुर में रहकर सोमश्री का चरित्र को स्वयं देखा है। पटना में सुलक्षणा चरित सुना है। प्रयाग में दूती का चरित्र अनुमान से जाना है तथा ब्रह्मकुंवर में सुभद्रा के चरति का स्वयं अनुभव किया है। सार यह है कि इन चारों ने ही बड़े-2 दुर्घट कार्यों को भी सहसा करके दिखाया है।

पटना नगर के राजा नंदिवर्द्धन थे। उनकी रानी का नाम सुनंदा और पुत्र का नाम श्रीवर्द्धन था। श्रीवर्द्धन बड़े तीव्रबुद्धि थे। इसलिये इन्होंने थोड़े समय में सत्रह

लिपियाँ सीख ली थीं पर वे म्लेच्छ भाषा की लिपि को नहीं जानते थे। एक समय यवनेश (म्लेच्छ राजा) ने नंदिवर्द्धन महाराज के पास एक पत्र भेजा। उसकी लिपि म्लेच्छभाषा की थी। लेखवाह-पत्र लाने वाले ने उस पत्र को लाकर 'नंदिवर्द्धन महाराज के सामने रख दिया। नंदिवर्द्धन श्रीवर्द्धन आदि सभी ने उस पत्र को पढ़ने का प्रयत्न किया, पर वह किसी से भी न पढ़ा गया। उस समय पूर्व शुभ कर्म के उदय से श्रीवर्द्धन के बहुत विरक्त भाव हुये। वे घर से निकल बलभीपुर पहुँचे। वहाँ गर्ग नामधारी एक अध्यापक के यहाँ रहने लगे। जब पाँच दिन बीत गये तब उन्होंने उपाध्याय से कहा-मैं आपके प्रसाद से यवन लिपि को जानना चाहता हूँ। उस द्विजाग्रणी गर्ग ने श्रीवर्द्धन को पात्र समझकर उनका कहना स्वीकार कर लिया। श्रीवर्द्धन भी गुरु की विनय करते हुए लिपि सीखने की इच्छा से रहने लगे। एक दिन रात के समय उन गर्ग महाराज की सोमश्री स्त्री कहीं को जा रही थी। उसको कहीं जाती देख गर्ग ने कहा-बच्चे को छोड़कर तू कहाँ जाती है? उत्तर में उसने कहा यदि आप आज्ञा दें तो नृत्य देख आऊँ। विप्र ने कहा-तुम्हीं जानो जैसा ठीक हो वैसा ही करो। वह हर्षित हो नृतय देखने को चली गई। शिष्य (श्रीवर्द्धन) भी उसके पीछे-पीछे हो लिया और कहीं पर छिपकर बैठ गया। कुछ दूर एक यक्ष का मठ था। वहाँ सोमश्री गई और बहुत देर तक अपने जार के साथ क्रीड़ा करती रही। बाद कहने लगी कि आप मेरे घर चलकर विश्राम करिए। जार ने कहा-यह तो बड़े आश्चर्य की बात है, क्योंकि यहाँ तो हम तुम क्रीड़ा कर रहे हैं इसलिये यह स्थान तो रमणीक है, पर तुम्हारे घर तो कुछ भी न कर सकेंगे। तो फिर वह रम्य कैसे हो सकता है? तात्पर्य यह है कि वहाँ जाना ठीक नहीं, क्योंकि वहाँ अपना कोई कार्य सिद्ध नहीं हो सकता है। बाद में सोमश्री ने संकेत भरे शब्दों में कहा-मेरी पालिका (सुलक्षणा) घर से चली गई थी और बहुत वर्षोंतक बाहर रही भी थी, बाद में अपने जार और पुत्र सहित किसी तरकीब से अपने ही घर में रहने लगी थी। इस सब बात-चीत के बाद वे दोनों वहाँ से निकलकर घर को चले आये, तथा वह शिष्य (श्रीवर्द्धन) भी किसी दूसरे मार्ग द्वारा गुरु गर्ग के घर जा पहुँचा। सोमश्री के संकेत के अनुसार वह जार गर्ग उपाध्याय के घर आया और उनसे कहने लगा-विप्र! मैं अपनी स्त्री सहित आपके यहाँ निवास करना चाहता हूँ, मैं एक पथिक हूँ। अब इस समय रात में कैसे और कहाँ जाऊँ? दयालु गर्ग ने उन्हें अपने घर पर रहने की आज्ञा दे दी। सोमश्री और वह जार दोनों गर्ग के घर ठहर गये। सोमश्री ने यहाँ भी दक्ष के मठ

की तरह ही दुर्विलास कर इस स्थान को भी उसी तरह रम्य कर दिखाया। इतने में सोमश्री का पुत्र रोया और गर्ग की ओर उसके स्तन पीने के लिये सटपटाया-झपटा। तब सोमश्री ने अपने जार से कहा-तुम किसी तरह पुत्र को माँगकर -मेरे पास ले आओ। जार ने गर्ग से पूछा-विप्रराज! पुत्र क्यों रोता है? गर्ग ने उत्तर में कहा-इसकी माता नृत्य देखने को गई है, इस कारण यह भूखा-प्यासा ही रो रहा है। विट ने कहा-यदि ऐसा है तो आप बच्चे को मुझे देवें। मैं अपनी स्त्री का दूध पिलाकर अभी वापिस लिये आता हूँ मेरी स्त्री का बच्चा अभी कुछ समय हुआ जब मर गया था, अतएव उसके स्तनों से दूध निकलता है। अनजान गर्ग ने पथिक के हाथ में बच्चे को दे दिया। पथिक भी बच्चे को दूध पिलाकर वापिस लौटा गया। इस प्रकार करते-करते उस दुष्टा सोमश्री ने जार के साथ दुर्विलास करते हुए रात पूरी कर दी। वह सवेरा होते ही उठी और घर से बाहर कुछ दूर जाकर वापिस आ गई और पति देव को क्रुद्ध हुआ देख उनके पैरों पर गिर बोली-स्वामिन्! आप क्रोध मत करो, मुझे हठ करके सखी ने जबरदस्ती ठहरा लिया था। मैंने सुना हैं-अपने घर आज रात को कोई पथिक ठहरा था, उसकी स्त्री के दूध को पी-पीकर बालक खूब संतुष्ट रहा है। यह बात सच्ची है या झूठी है? गर्ग ने कहा यह तो सत्य है। गर्ग का ऐसा उत्तर सुन सोमश्री संतुष्ट हुई सी बैठ गई। सच है वंचक (ठग) लोग दूसरे के दुःख बिल्कुल नहीं जानते हैं। इस दुष्टा उपाध्यायी के ऐसे स्वभाव को जानकर रात में शिष्य के बहुत विरक्त भाव हो गये। वह आश्चर्य के साथ सोचने लगा-नवग्रह, समुद्र का जल और बालु का ढेर इनका परिमाण तो किसी तरह से जाना भी जा सकता है, किन्तु स्त्री का मन किसी से भी नहीं जाना जा सकता है। अन्त में शिष्य ने सोचा कि बहुत विकल्प जाल उठाने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। इन सब बातों को कल उपाध्यायी से ही पूछ लूँगा। श्रीवर्द्धन मुनिराज ने प्रभंजन से कहा कि दुष्ट चेष्टा को करने वालीं, पाप की खानि स्त्रियों का जो हाल मैंने स्वयं देखा है वह तो आपसे कह दिया। अब कुछ सुना हुआ हाल कहता हूँ उसको भी आप सावधान हो सुनो। इस प्रकार प्रभंजन गुरु के चरित में यशोधर चरित की पाठिका की रचना में द्वितीय सर्ग समाप्त हुआ।

तृतीय सर्ग

एक दिन निर्लज्जा सोमश्री ने कुछ संकेतों में उस छात्र (श्रीवर्द्धन) से कहा– भद्र तुम जब तक मेरे मनोरथ को पूरा न करोगे तब तक तुम्हारा लिपि सीखने का मनोरथ कैसे सिद्ध हो सकता है? कभी भी सिद्ध नहीं हो सकता है। सोमश्री की चेष्टा से उसके मनोरथ को जानकर शिष्य ने उत्तर दिया कि तुम्हारा भी मनोरथ इस जगह कैसे फलित हो सकता है? सोमश्री ने कहा कि मेरी पालिका (सुलक्षणा) ने जैसी विधि की उसी तरह अपन भी दूसरी जगह चलें। शिष्य ने पूछा कि शुभे! सुलक्षणा ने कैसे विधि की थी सो कहो। श्रीवर्द्धन मुनि ने प्रभंजन महाराज से कहा–आर्यपुत्र! मेरे पूछने पर जैसी कुछ सुलक्षणा की, की हुई विधि मुझे मेरी उपाध्यायी ने बताई थी वह सब मैं कहता हूँ, तुम स्थिर चित्त हो कर सुनो।

पटना नगर के राजा नंदिवर्द्धन थे। उनकी रानी का नाम सुनन्दा था। नंदिवर्द्धन और सुनन्दा के पुत्र का नाम श्रींवर्द्धन था। इसी नगर में एक हरिभद्र नामकवैशय रहते थे। उनकी भार्या का नाम भामिनी था। हरिभद्र और भामिनी के अतीव उत्तम सात पुत्र हुए। उनके नाम श्रीदत्त, जयदत्त, भद्र, गोवर्द्धन, जय, विष्णु, गाम इस प्रकार थे तथा उनके दो पुत्री भी थीं जिनके बालरंडा और सुलक्षणा ये नाम थे। एक दिन सुलक्षणा तालाब पर स्नान करने को गई। वहाँ उसने श्रीधर नाम के एक मनोहर विद्यार्थी को देखा। उसको देखते ही सुलक्षणा की कामाग्नि जल उठी। श्रीधर ने भी उसके दृष्टि-विभ्रम से जब जान लिया कि यह मेरे ऊपर अनुरक्ता हो रही है तब उसने यह श्लोक पढ़ा–

पुण्डरीकविशालाक्षं, रोमराजीत्रंगकं।
उरोजचक्रिकं चेदं, भाति योषित्सरोवरं।।1।।

अर्थात्–यह सरोवर संत्री की नाई मालूम पड़ता है–शोभित होता है, क्योंकि

जिस तरह स्त्री के विशाल नेत्र होते हैं उसी तरह इसमें भी कमलरूपी विशाल नेत्र हैं। स्त्री के रोमराजी होती है इसमें तरंगें ही रोमराजी है, स्त्री के कुच होते हैं इसमें भी चक्रवाकरूपी कुच हैं। तात्पर्य यह है कि यह स्त्री से किसी बात में भी कम नहीं है। इसके उत्तर में सुलक्षणा ने भी यह श्लोक बोला–

एतद्रसस्य योऽभिज्ञो, विलासी विमलाशयः।
त्यागी भवति तस्येदं, स्निग्धयोषित्सरोवरं।।2।।

अर्थात्–यह योषित रूपी सुन्दर सरोवर उसी पुरुष का है जो इसके रस का रसिक है–ज्ञाता है, विलासी है, विमलाशय है तथा अन्य वस्तुओं का त्यागी है। उसके इन वचनों को सुन, श्रीधर का मन बहुत प्रसन्न हुआ और वह उसके जाने हुए मन को और भी निश्चत जानने के लिये बोला–

किमतः करणं प्रोक्तं को निद्यस्तत्ववेदिभिः।
मनोभवः क चेतस्के, कः पीड़ाकृन्ममाधुना।।3।।

अर्थात्–इसमें प्रबल कारण क्या माना गया है? तत्त्ववेदी लोग किसकी निंदा करते हैं? (उत्तर–कामदेव) कहाँ उत्पन्न होता है? (उत्तर–काम की उत्कंठा वाले पुरुष के मन में) इस समय मुझे पीड़ा कौन दे रहा है? (उत्तर–कामदेव) श्रीधर के वचनों को सुनकर जनप्रिया सुलक्षणा ने कहा–

पृच्छत्यवगमं साधो! कः सदात्र कलिप्रियः।
किं च प्रजायते ब्रूहि, को ममासन् जिहीर्षति।।4।।
तथाप्यन्तः शकटं प्राप हास्मत्पीड़नो रिपुः।

अर्थात्–हे साधो! साधु लोग आगम में क्या पूछते हैं? (उत्तर पुरुष)(आत्मा) संसार के इस कलि काल में क्या प्यारा है? (उत्तर–कामदेव) मेरे मन में क्या उत्पन्न हो रहा है। और मेरे प्राणों को कौन हरना चाहता है? (उत्तर–कामदेव)। फिर भी तो वह मुझे पीड़ा देने वाला मेरा बैरी मेरे मन को प्राप्त हो चुका सो क्या?

इस प्रकार परस्पर में बात–चीत करने से अतीव प्रीति को प्राप्त हुए उन दोनों का रागरूपी समुद्र उसी तरह वृद्धि को प्राप्त हुआ जिस तरह उजले पाख (शुक्ल पक्ष)

के चन्द्रमा की किरणों से समुद्र वृद्धिंगत होता है। सुलक्षणा ने कहा कि मैं कुछ काल यक्ष गृह में ठहरकर राजमार्ग (सड़क) से घर को जाऊँगी उस समय तुम मेरा करपल्लव (हाथ रूपी पल्लव) पकड़ लेना, और जब पुरवासी लोग इधर-उधर से आ-आकर कोलाहल मचावें तब तुम उनसे कह देना कि यह मेरी प्रिया है। हे प्रिय! क्या आप ऐसा करने को तैयार हैं? सुलक्षणा के रूप पर आसक्त-चित्त श्रीधर ने उसका कहना स्वीकार कर लिया। सच है, कामी जनों को दुःख का भान ही नहीं होता कि आगे हमें क्या दुःख होगा? एक समय सांयकाल में मतवाले हाथी की नाई चलने वाली वह मुग्धा ताँबे का पात्र हाथ में लिये जल से भीगे हुए कुशों के द्वारा धरणी तल को सींचती हुई राजामर्ग में होकर जब जा रही थी तब श्रीधर विद्यार्थी ने उसके पास आकर उसका हाथ पकड़ लिया। लोगों ने इधर-उधर से आ-आकर बहुत कोलाहल मचाया और "यह मेरी प्रिया है, इस प्रकार कहने पर भी उस छात्र को वहाँ से हटा दिया। बाद में पहिले संकेत के अनुसार श्रीधर यक्षगृह को चला गया, और वह भी आकुलितमना होती हुई जल्दी से अपने घर को चली आई। वहाँ उसने अपने पिता आदि सभी बन्धुओं को बुलाया और आंसु को बहाते हुए कहा कि हे तात! आज किसी एक पुरुष ने जबरदस्ती मेरा हाथ पकड़ लिया है। इसलिये उस पाप का प्रायश्चित लेने को मैं अभी जलती हुई आग में प्रवेश करती हूँ। सुलक्षणा के इन वचनों को सुनकर पिता ने कहा-वत्से! तुम्हारा कैसा स्वभाव है उसको तो मैं अच्छी तरह से जानता हूँ। दूसरे लोग मात्सर्य के वश हो जो चाहे कहा करें उससे तुम्हें क्या प्रयोजन है! तुम स्नानादि क्रियाओं में संलग्न रहती हुई मेरे घर रहो। सुलक्षणा ने कहा कि अब आप लोग अपने-2 बंधुवर्ग के साथ अपने-2 घरों को पधारें। मैं प्रातः काल इस बात का जो इलाज करूँगी, वह सब मेरी क्रिया ही से आप लोगों के आगे आ जायेगा। वचनों द्वारा कहना निष्फल है इसके बाद पिता आदिक सब लोग तो सुलक्षणा के वचनों से दुःखी होते हुए उसके गुणों का स्मरण करते-2 अपने-2 घरों को चले आये, उधर सुलक्षणा की माता ने उसकी अवस्था जानने की इच्छा से इंदुवापिका नाम की दूती को उसके पास भेजा। दूती गई और सुलक्षणा के घर पहुँची। वहाँ सुलक्षणा ने उसे शराब पिलाकर मतवाला कर दिया और जब वह बिल्कुल बेहोश हो गई तब उसे अपने पलँग पर लिटा दिया तथा अपने आप बहुत से रत्नों को इकट्ठा करके जब बाँध-बूँध लिया तब घर में आग लगा दी

और वह तन्वी स्वयं श्रीधर के साथ दशपुर नगर को चली गई। बांधवों ने जब देखा कि सुता ने अपने नाम के पीछे अपने घर को भी जला डाला है, तब वे आकुलित होते हुए बहुत रोने चिल्लाने लगे और उसके गुणों का बार-बार स्मरण करने लगे। बांधवों ने सुलक्षणा को उद्देश्य करके उसके मरण की सब क्रियाएँ की, उसे जलांजलि दी। बाद में अपने-घर आकर उसे भूल भाल गये और सुख से रहने लगे। जब राजा लोगों ने उसके सारे वृत्तान्त को सुना तब वे भी आश्चर्य के समुद्र में गोते खाने लगे और उसे साधुवाद देने लगे। वे दोनों दशपुर नगर में पहुँच गये और वहाँ रतिक्रीड़ा करते हुए सुखसागर में निमग्न होकर रहने लगे। वहाँ बहुत काल पश्चात् उनके कई एक बालबच्चे पैदा हुए, धीरे-2 जब सब धन पूरा हो गया तब वह सुलक्षणा पति-पुत्र दोनों ही को साथ लेकर फिर अपने पिता के घर को आई और वहाँ सुख से रहने लगी। हे राजेन्द्र! सोमश्री (गर्ग की स्त्री) के इन वाक्यों को सुनकर मुझे बहुत ही विस्मय हुआ। मैं सोचने लगा -

महामोहारुनीरस्य, वचनावर्त्तशालिनः।
रामाचेतोंऽबुधेर्मानं, लभन्तेऽद्यापि नो नराः।

अर्थात्-जिसमें महामोहरूपी भारी-अगाध तो जल भरा हुआ है और चतुराई के वचनरूपी भँवर उठा करते हैं, उस स्त्री के मनरूपी समुद्र की थाह पुरुषों ने अब तक भी नहीं पाई है। ऐसी स्त्रियों से आत्मकल्याण के अर्थी महानुभावों को सावधान एवं दूर ही रहना चाहिए।

राजन्! मैंने यहाँ तक अपनी सुनी हुई कथा को तो आपसे कह दिया, पर अब मैं अनुमान से जाने हुए कथानक को कहता हूँ सो तुम सुनो। जब सोमश्री निराश हो गई थी- उसने जान लिया था कि श्रीवर्द्धन मेरे मनोरथ को सिद्ध नहीं करेगा, तब उसने मुझे इन्दुवापिका दूती का यह कथानक सुनाया था।

जम्बूद्वीप संबंधी भरत क्षेत्र के मगध देश में प्रयाग नाम का एक सुन्दर शहर है। इसमें एक उत्तम वैश्य रहते थे। उनका नाम यमुन था, तथा उनकी भार्या का नाम गंगश्री था। वह बहुत प्रसिद्ध थी। उसी नगर में एक विष्णुदत्त वैश्य और थे। एक दिन विष्णुदत्त की दृष्टि, रूपवती व जावराय श्रीकर युक्ता गंगश्री सुन्दरी पर पड़ी। इसके रूप

लावण्य की छटा को देखते ही विष्णुदत्त काम विह्वल पुरुष की तरह हो गया। वह अपने घर कमल पत्रों के बिस्तर पर सोया ही था कि उसे घर इन्दुवापिका नाम की दूती भिक्षा के अर्थ आई और विष्णु दत्त को कामार्त्त देखकर वह अपने आप ही बोल उठी कि मैं वैसे तो सभी शास्त्रों में ही कुशल हूँ, पर कामशास्त्र का मुझे पूरा-2 अनुभव है। यदि आप कहें तो आपके मन को जिसने चुरा लिया है उसे आज ही आपके पास ले आऊँ। उसके इन वचनों को सुन विष्णुदत्त ने कहा कि मैं तो तुम्हारा किंकर हूँ, तुम मुझे गंगश्री से मिला दो। दूती ने कहा कि तुम गंगश्री के पति यमुन के पास जाना और उससे कहना कि यह जैसा तुम्हारा वस्त्र है, इसी तरह का एक मुझे भी चाहिए, कृपाकर आप ऐसा ही बनवायें। विष्णुदत्त ने ऐसा ही किया और वस्त्र को लाकर दूती के हाथ में दे दिया। दूती वस्त्र को लेकर गंगश्री को वश में करने की इच्छा से गई और क्रम-2 से सबके घर फूल बाँटती हुई गंगश्री के घर पहुँची। वहाँ उसकी शय्या पर उस वस्त्र को डालकर चली आई और विष्णुदत्त से कहने लगी कि तुम्हारा सब कार्य सिद्ध हो गया है, अब उत्सुक मत होओ, बहुत जल्दी गंगश्री तुम्हारे वश में हो जायेगी। कुछ काम से जब यमुन घर आया तब उसने अपनी भार्या की शय्या पर विष्णुदत्त का वही वस्त्र पड़ा हुआ देखा जो उसने बनवा कर दिया था। वह गंगश्री पर बहुत रिसिया उठा और उसने उससे पूछा कि खले! यहाँ विष्णुदत्त का यह वस्त्र कैसे आया है? उसने कहा-मुझे मालूम नहीं। इस पर तो यमुन और भी लाल पीला हुआ और कहने लगा कि यह सब तेरी ही तो करतूत है और तू कहती है कि मुझे मालूम नहीं। जा, मेरे घर से अभी चली जा, निकल जा। यहाँ अब तेरा कुछ भी काम नहीं है। वह बिचारी साध्वी गंगश्री बहुत आकुलित होकर अपने पिता के घर को चली गई। वहाँ रात के समय वह कुधी इन्दुवापिका पहुँची और उससे कहने लगी-बाले! तू अनमनी क्यों है? गंगश्री ने अपना सभी वृत्तान्त कह सुनाया। उसके वृत्तान्त को सुनकर दूती ने कहा-यदि तुम उस विष्णु को चाहती हो, जो कि भोग भोगने की अपेक्षा से इन्द्र के समान है, रूप से कामदेव के समान है, दानी होने से कर्ण की समता करता है और निर्भय होने कारण अर्जुन के समान है, तो मैं तुम्हारे मनोरथ को सिद्ध करने की चेष्टा करूँ। गंगश्री ने कहा कि यद्यपि यह अकर्तव्य है तो भी मैं स्वीकार करती हूँ। यदि तुम मेरे पति को मेरे मुखरूपी कमल के ऊपर चंचल नेत्रों वाला कर देने की प्रतिज्ञा करो। दूती ने उसके वचनों को

स्वीकार कर लिया और रात के समय उसको विष्णुदत्त के पास पहुँचाकर अपने घर को चली आई। किसी दूसरे दिन इन्दुवापिका ने विष्णुदत्त से कहा कि तुम गंगश्री के पति के सामने मुझसे अपना लाख्य वस्त्र माँगना। विष्णुदत्त ने वैसा ही किया--यमुन के सामने दूती से अपना लाख्य वस्त्र माँगा। दूती ने कहा कि मुझे याद नहीं है, वह उस समय किसी के घर पड़ा रह गया होगा जब मैं सबके घर पुष्प बाँटने को गई थी। इतने में यमुनदत्त ने कहा कि भद्रे! तुम्हारा वस्त्र यह है। तुम मेरे घर छोड़ आई थी, अब ले जाओ। दूती ने वस्त्र ले लिया और वहीं यमुन के सामने ही विष्णुदत्त को दे दिया। विष्णुदत्त ने उसी वक्त बहुत से वस्त्र वगैरह देकर दूती का खूब सत्कार किया और गंगश्री पर आसक्त चित्त वह सुख से अपने घर में रहने लग गया। यह सब वृत्त जानकर गंगश्री के पति यमुन को भारी दु:ख हुआ। वे बहुत पछतावा करते हुए अपनी भार्या गंगश्री के पास पहुँचे और उसे नमस्कार कर कहने लगे–हे सरल चित्तवाली साध्वि! प्रसन्न होओ। तुम तो सतियों में श्रेष्ठा हो, पर मैंने अपने अज्ञान से यह नहीं जाना और तुम्हें कटुक वचन कहकर दु:ख दिया। इसके लिये हे सुलोचने! मेरे ऊपर क्षमा करो। पति के ऐसे वचन सुनकर माता–पिता की भेजी वह गंगश्री प्रसन्न होती हुई अपने पति के साथ घर को आई और सुखरूपी समुद्र में निमग्न होती हुई तथा अपने पति के नेत्रकमल को तृप्त करती हुई प्रसन्न चित्त से रहने लगी। उसके दुराचार को कोई भी न जान पाया। श्रीवर्द्धन मुनि कहते हैं कि मैंने उसके कहे हुए इस कुचेष्टा को सुन यह निश्चय किया कि जिस तरह इसका कहा हुआ सुलक्षणा का कथानक सुना है उसी तरह यह भी अनुमान से जाना जाता है – निश्चित होता है कि उसी तरह यह भी हो सकता है। इस अनुमानाख्य कथानक को सुनकर मैंने सोचा–

साहसोर्वीरुहाकीर्ण, भोगभोगिविभीषणं।
कोपव्यालावलीढं च, स्त्रीमानसमहावनं।

अर्थात् – स्त्रियों का मन वन से भी भारी भयानक कानन जंगल है। जंगल वृक्षों से भरा होता है, स्त्रियों के मनरूपी वन में साहस रूपी भयंकर वृक्ष होते हैं। वन सर्पो से भयानक होता है, स्त्रियों का मनरूपी वन भोगरूपी सर्पों से भयानक होता है, फर्क इतना है कि वन में सर्प डसे तो दवा भी हो सकती है और हकीम भी मिल सकता

है, पर भोगरूपी सर्प के काटे की कोई भी दवाई नहीं और न कोई उसका वैद्य ही है। वन व्यालों से भरा होता है, स्त्रियों का मनरूपी वन क्रोधरूपी व्यालों से भरा होता है। ऐसे भारी भयंकर स्त्रियों के मानसरूपी वन से–संसार से केवल मुनिजन ही भयभीत हुए है, क्योंकि वे धीर होते हैं, जितेन्द्रिय और शान्त होते हैं, उनके मानस ज्ञानरूपी जल से धोये जाने के कारण स्वच्छ होते है। राजन्! मैनें अनुमानाख्य कथानक को तो आपसे संक्षेप में कह दिया। अब मैं थोड़ा सा कथानक अनुभव किया हुआ कहता हूँ, तुम सावधान हो सुनो।

इस प्रकार स्त्री के चरित को देखकर, सुनकर और अनुमान से जानकर मुझे बहुत वैराग्य पैदा हुआ। अतएव उसी समय मैंने जैनेन्द्री दिगम्बर दीक्षा ले ली और मैं जिन भगवान् के द्वारा बताए हुए तप को करने लगा। जब मैं अच्छी तरह से मुनि धर्म की क्रियाओं के प्रतिपादक आगम को पढ़कर सब क्रियाओं को खूब ही जान गया, तब मैंने गुरु से निवेदन किया कि महाराज्! मैं आपकी अनुज्ञा से एकाकी विहार करना चाहता हूँ। गुरुवर्य ने स्वीकार कर लिया। मैं भी उनको नमस्कार कर चलता बना–चला आया और कुछ समय में एक पलाश नामक गाँव में आया। वह गाँव प्राय: मांसभोजियों से भरा हुआ है–उनका ही यहाँ बहुलता से निवास है। इस गाँव में एक गुणाग्रणी सोमशर्मा नाम के ब्राह्मण रहते हैं। उनकी स्त्री का नाम मात्र का नाम सुभद्रा है, सार्थक नहीं। यहाँ पर एक सुन्दर शून्य मकान में हम ठहरे ही थे कि इतने में बालक और जार को साथ लिए वहीं पर सुभद्रा पुँश्चली भी आ गई। मैं एक कोने में बैठा–2 देख रहा था कि उसने दूध पीते हुए और जोर–जोर से रोते हुए प्रौढ़ पुत्र को तथा जार को मार डाला उस समय मैंने प्रतिज्ञा की कि मेरे ऊपर उपसर्ग आकर यदि क्रम से चला जाएगा तो मैं सवेरे आहार आदि में प्रवृत्ति करूँगा, नहीं तो आजन्म को मेरे आहार आदि का त्याग है। जीने में, मरण में, लाभ में, अलाभ में, संयोग में, वियोग में, बंधु में, मित्र में, सुख में और दु:ख में मेरे हमेशा ही समता भाव है। मैंने उस समय जिनों का, सिद्धों का, उपाध्याय, आचार्य और साधुओं का जो कि संसार में शरण हैं, उत्तम हैं, मंगलरूप हैं, आदर के साथ निष्काम हो स्मरण किया। मैंने विचारा कि मेरा दर्शनज्ञान स्वरूप एक आत्मा ही शाश्वत है इसके सिवाय जितने मिलते और बिछुड़ते हुए पदार्थ हैं वे सब ही नश्वर हैं–मेरी आत्मा से भिन्न हैं। इस प्रकार धर्म ध्यान में लीन हुए मुझे सुभद्रा ने

देखा। उसने मुझे कहा कि भव्य! यदि तुम जीना चाहते हो तो मेरे साथ काम-क्रीड़ा करो। इसके बाद उन दोनों और पुत्र को जमीन में डालकर वह मेरे पास आ गई और स्त्री के कृत्यों को करने लग गई। वह अपने मनचाहा तो मधुर-2 बोली, मनमाना मेरे शरीर से संगम करती रही, हँसती रही, हाव-भाव आदि करती रही, कटाक्षों से देखती रही तथा अपने केशो को छुटका-2 कर बार-बार बाँधती रही और स्तन आदि को प्रकट कर-2 दिखाती रही, मेरी अँगुलियों को तोड़ती रही, अंगों को ऐंठती रही, जँभाई लेती रही। अधिक क्या कहें वह निर्वस्त्र हो मेरे शरीर को अपने शरीर से स्पर्श करती रही, अपने बाहु-पाशों में मुझे बार-बार बांधने की दुचेष्टा व आलिंगन करती रही। और न जाने कितनी बार तो उसने मेरे अंग-उपांगों को गुद-गुदाने व सहलाने का दुस्साहस भी किया। इस प्रकार उसने अपनी नाना प्रकार की विडंबना की, किन्तु जब वह मेरे मन को बिल्कुल भी (रंचमात्र) न चला सकी तब बहुत लज्जित हुई और शस्त्र लेकर मुझे मारने को तैयार हुई। उस समय किसी देवता ने आकर उसे पकड़ लिया और चित्र की तरह स्थिर कर दिया। प्रात: काल के समय "अब उपसर्ग नहीं करना" यह कह कर व्यन्तरी ने उसको छोड़ दिया। मानों उसने मेरे अभिप्राय को ही जान लिया हो और नमस्कार कर चली गई। जब सूर्य उदित हो गया, मार्ग में लोग जाने आने लगे, वह प्रासुक हो गया तब मैं भी उस मकान से निकल धीरे-धीरे इस पुरी में आया हूँ।

राजन्! मैंने जो कुछ देखा सुना और अनुमान से निश्चय किया वही मेरे तप का कारण हुआ है, तथा सुभद्रा के संग से उन सब बातों का मुझे खूब अनुभव भी हो गया है सो सब मैंने आपसे कह ही दिया है। इस प्रकार प्रभंजन गुरु के चरित में यशोधर चरित की पीठिका की रचना में तृतीय सर्ग पूरा हुआ।

चतुर्थ सर्ग

इस प्रकार अपने तप का कारण कहकर श्रीवर्द्धन मुनिराज ने जय और मेरु के तप का कारण कहना शुरू किया। भरतक्षेत्र में कीर्तिपुर नामक नगर है, इस नगर के राजा जितशत्रु थे। उनकी रानी का नाम जयावती था। मंत्री का नाम जय था, वे द्विज थे। उनकी स्त्री का नाम जयश्री था, वह पति की अनुकूला और प्रियभाषिणी थी। जय मंत्री और जयश्री के सात पुत्र थे, वे सभी 64 कलाओं में तथा और अन्य गुणों में भी कुशल थे एवं उनके मंदिरा आदि छः पुत्रियाँ भी थीं, वे सभी सरल स्वभाव वाली और मनोरमा थी। इन सभी पुत्र और पुत्रियों को विवाह के समय क्रम-2 से इन्हीं की माता-डाकिनी ने मार खाया था, केवल एक मेरु बचा था। वह अन्तिम पुत्र मेरु के समान निश्चल मनवाला था, नीति निपुण, विनयी और आचार व्यवहार में अतीव प्रवीण था। जब इसके विवाह का भी समय आया तब इसने रात के समय घर में खूब रोशनी करवाई और आप हाथ में चमचमाती हुई तलवार को लेकर उसी घर में जा बैठा। थोड़ी देर में उसे घर के एक किसी कोने में एक हाथ दीख पड़ा जो कि चूड़ियों से मण्डित एवं मनोहर था। मेरु ने उसे उसे देखते काट डाला, उस समय दयाभाव से बिल्कुल ही काम न लिया। बाद में उस स्थान पर जाकर देखा तब उसे मालूम हुआ कि जिसका मैंने हाथ काट डाला है वह तो मेरी माता ही है और भुजाहीन हो जाने से बहुत दुःखी हो रही है। माता को देखकर वह सोचने लगा-

अहो कष्टमहो कष्ट-मंबा खादति यत्सुतान्।
कोऽन्योऽस्तु शरणं तेषां, संसारे सारवर्जिते।।

अर्थात्-बड़े भारी कष्ट की बात है कि जब इस असार संसार में अपने पुत्र-पुत्रियों को माता ही खा जाती हैं, तब उनको यहाँ दूसरा कौन शरण-सहाई हो सकता है।

इतना विचार कर वैराग्य को प्राप्त हुआ मेरु वहाँ से निकला और अपने पिता जय के पास पहुँचा तथा उनसे अपने नेत्रों से आसुओं को बहाते–2 माता का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। मेरु के मुख से उसकी माता एवं अपनी स्त्री के ऐसे दुष्कृत्य को सुन वे भी विरक्त हो गये। गृहावास से विरक्त हुए वे दोनों घर से निकल धर्म की परीक्षा करने में दत्तचित्त उन्होंने बुद्ध आदि के बताए हुए धर्मों की खूब ही जाँच की और अन्त में श्रीधर नामक मुनि को नमस्कार कर उनसे दिगबर दीक्षा ले ली और तप में तल्लीन हो गये! हे राजन्! मैंने जय और मेरु का कथानक तो थोड़ा सा आपको सुना दिया। इस प्रकार जय और मेरु का कथानक पूरा हुआ। अब मैं शुंद के कथानक को कहता हूँ सो तुम सावधान होकर सुनो।

इसी भरतक्षेत्र में एक हस्तिनापुर नाम का नगर है, इस नगर के राजा शुंद थे। वे बहुत सुन्दर आकार वाले थे। और उनका कोई भी बैरी न था। उनकी रानी का नाम मदनावली था। वे बड़ी सुन्दर थी, कामदेव के धनुष की डोरी के समान ही थीं, तन्वंगी–कृशांगी थीं। ऐसी रानी के साथ कलालय महाराजा शुंद समय–2 पर क्रीड़ा किया करते थे। एक समय रानी के साथ महाराज वन में क्रीड़ा करने को गये थे। वहाँ उन्होंने रानी को रात के समय एक बन्दर के साथ काम क्रीड़ा करते हुए देख लिया और क्रोध में आ धनुष पर बाण चढ़ाकर उस बन्दर को मार डाला। अपने अभीष्ट फल की वांछा से उस दुष्टा रानी ने कहा कि हे राजन्! इन बन्दरों का चरित बड़ा दुष्ट होता है, इसलिये इस बन्दर को आप जला ही देवें तो अच्छा है। क्या आपने नहीं सुना कि इन लोगों ने रावण को मार डाला था? रानी के वचनों को सुनकर राजा ने श्रीखण्ड, अगरु आदि लकड़ियों से उसे जला दिया। इतने में रानी आई और उस बन्दर के स्नेह से उसकी चिता पर कूद पड़ी–दग्ध हो गई। यह देख शुंद बहुत विस्मित हुए। अतः वे जिनदत्त मुनि के पास गये और वहाँ उनके उपदेश से धर्म को समझकर उनसे दिगम्बर जिन दीक्षा ले ली और तप करने लगे। इस प्रकार शुंद का कथानक पूरा हुआ। श्रीवर्द्धन मुनिराज, प्रभंजन राजा से कहते हैं कि हे अपराजित! सबुद्धे! कषायविजेता राजन्! अब आप अपराजित मुनि का कथानक सुनो।

इस भरतक्षेत्र में एक कौशांबी पुरी है। इस पुरी के राजा बलाधिप थे। उनकी

रानी का नाम जया था। उनके पुरोहित का नाम अपराजित था। वे द्विज थे, उनकी स्त्री का नाम जयमाला और पुत्र का नाम पाल था। पाल की बहिन का नाम श्री देवी था जो कि मंत्र तंत्र की सिद्धि में बहुत चतुरा थी। उसकी मदनवेगा नामकी सखी थी, जिसके मन में कामदेव का सतत् वास रहता था। श्रीदेवी का विवाह राजगृह के जयभद्र के साथ हुआ था। वहाँ उसने किसी चिलात (भील) से यह उपदेश प्राप्त किया कि जो स्त्री निशंक हो अपने बच्चे को मारकर तथा मंत्र से उसे मंत्रित कर खा लेती है, वह उसी समय आकाश में चलने लग जाती है। जब श्रीदेवी के भाई ने सुना कि श्रीदेवी के बालबच्चा होने वाला है तब वह उसे लिवाने को राजगृह गया और वहाँ से लिवाकर उसे मदनवेगा सखी के साथ-2 लिये आ रहा था। मार्ग में विंध्याचल पर्वत के बीच में उसने पुत्र को जन्म दिया और वह उसे मारकर खाकर सहसा आकाश में चली गई। पाल ने उसका सारा का सारा वृत्त जान लिया। वह बहुत दु:खी होता हुआ घर आया, और वहाँ उसने श्रीदेवी का सारा हाल माता को कह सुनाया। अपनी पुत्री के चरित को जानकर क्रुद्ध हुई माता भी सामने खड़े हुए पुत्र से बोली कि पुत्र के स्नेह से रहिता, मलिन परिणामी वाली वह दुष्टा संसार में दुर्लभ ऐसे उपदेश को मुझे बिना दिये ही चली गई। माता के ऐसे वचनों को सुन, पाल को बहुत शोक हुआ। वे बहुत भयभीत होकर पिता के पास गये और उनसे सारा का सारा वृत्तान्त कह दिया। वे कहने लगे कि मेरी माता तो राक्षसी के सदृश है और बहिन साक्षात् साक्षसी ही है, इसलिये हे तात्! उठो, यहाँ से चलें, इस जगह भारी दारुण भय है। बाद में संसार से भयभीत हुए वे दोनों घर से वन को चले गये। वहाँ से महेन्द्र नामक मुनिको नमस्कार कर उनके निर्वाण दीक्षा ले मुनि हो गये। इस प्रकार अपराजित और पाल का कथानक पूरा हुआ।

हे राजाओं में श्रेष्ठ राजन्! अब संसार से उद्वेग को पैदा करने वाले वज्रायुध के कथानक को सावधान होकर सुनो। इसी भरतक्षेत्र में विशाला (उज्जैनी) नाम की एक नगरी है। इस नगरी के राजा श्रीपाल थे। इनकी रानी का नाम मंगली था। उसके एक मंगिका नाम की पुत्री थी। श्रीपाल के मंत्री का नाम वज्रवेग था। जो कि सज्जनों को बहुत प्रिय था। मंत्री की स्त्री का नाम वज्रोदरी था। वज्रवेग और वज्रोदरी के पुत्र का नाम वज्रायुध था तथा उसको सहस्रभट और वज्रमुष्टि भी कहते थे। किसी समय राजा

श्रीपाल वज्रायुध के वीर्य को देखकर बहुत संतुष्ट हुए थे और उन्होंने अपनी कन्या (मंगिका) का विवाह उसके साथ कर दिया था। कुछ दिनों के बाद बसंत ऋतु आई। तब राजा, मंत्री जमाई तथा और-2 सामन्तों को साथ लेकर क्रीड़ा करने को वन में गये। इसी बीच में वज्रोदरी ने एक गुंजा नाम के सर्प को घड़े में रखा। वह बार-2 अपनी लाल जिह्वा को फर-2 निकालता था, भारी भयानक था, बड़े विस्तारवाला और लम्बा चौड़ा था तथा उसी घड़े में, सुन्दर-2 वस्त्र, दिव्य-2 आभूषण, कर्पूर कुसुम और चंदन आदि का बना हुआ सुगन्धि-लेपन तथा पुष्पों की गंधमय मालायें जो सुन्दर-2 पुष्पों से बनाई गई थी और मनोहर एवं उज्वल तारावलि-हारावलि आदि पदार्थ भी रक्खे।

इन सबको लेकर मंगिका से कहा कि शोभने! आजकल बसन्त का समय है इसलिये तुम नये-2 वस्त्र और आभूषण वगैरह पहिन लो। अपनी सासु के इस प्रकार के कपट से भरे हुए वचनों को सुन बिचारी मंगिका को उसके कपट का कुछ भी भान नहीं हुआ। वह शीघ्र ही अपने अच्छे भावों से उसके वचनों का आदर करने लगी और ज्यों ही उसने घड़े के अन्दर अपना हाथ डाला त्यों ही घड़े में बैठे हुए सर्प ने क्रुद्ध होकर उसके हाथ को पकड़ लिया। उसके सारे शरीर में विष चढ़ गया। तब शरीर थर-थर काँपने लगा। वह तन्वी जड़ से उखाड़ दी गई बेल के समान भूतल पर गिर पड़ी। सूरज अस्ताचल पर जा ही रहा था कि उसी समय मंगिका को ले जाकर वज्रोदरी शमशान भूमि में वहाँ पर रख आई जहाँ पर एक यतीश्वर ध्यान लगाये हुए बैठे थे। इतने में वज्रायुध वन से घर आया और अपनी प्रिया को न देखकर माता से पूछने लगा। माता ने कहा कि तुम्हारी वल्लभा मर गई है। यदि तुम्हें उससे कुछ कार्य हो तो जाओ वह शमशानभूमि में है। माता के मुख से अपनी प्राणवल्लभा को मर गई जानकर वज्रमुष्टि को इतना भारी दु:ख हुआ मानो उसे वज्र का ही घाव हो गया हो। वह सोचने लगा कि यदि मेरी प्रिया मर गई है तो मैं भी उसी के साथ मर जाऊँगा और यदि वह जीती है तो मैं भी जीता रहूँगा, मेरी यही प्रतिज्ञा है। इस प्रकार दु:खी हो हाथ में तलवार लेकर घर से निकल शमशान भूमि में गया। जहाँ उसकी प्राणवल्लभा थी वहाँ उसने मानो साक्षात् ध्यान में ही बैठा है ऐसे नासा के अग्रभाग पर दृष्टि लगाए बैठै हुए

सर्वोपधि नामक मुनि को तथा अपनी वल्लभ मंगिका को भी देखा। मुनि को देखते ही वह विचारने लगा कि यदि मेरी वल्लभा जीवित हो जायेगी तो मैं कमलों के द्वारा इन मुनिराज के चरण कमलों की पूजा करूँगा। इस प्रकार विचार करता-2 वह मंगिका को मुनि महाराज के चरणों के समीप में ले आया। मुनिराज के समीप की वायु के स्पर्शमात्र से ही मंगिका सहसा विष-विकार से रहित हो गई। तब वह अपनी प्यारी को तो उन मुनि महाराज के चरणकमलों के समीप में छोड़ गया और आप हर्षित होता हुआ शतपत्र कमल लेने को तालाब पर चला गया। मथुरा में एक जीवन्धर नामक सेठ थे, उनकी भार्या का नाम जया था। जीवन्धर और जया के सात पुत्र थे। उनके नाम विजय, वसुदत्त, सूर्य, चन्द्र, सुप्रभ, जयभद्र, जयमित्र इस प्रकार थे। वे सभी सातों व्यसनों से दु:खी थे, बहुलता से चोरी से नष्ट भ्रष्ट हुए थे और एक को छोड़कर शेष सब उज्जैनी में आकर ठहरे हुए थे, तथा उनमें से एक उसी शमशानूभूमि में बैठा था। उसे वहाँ बैठा देखकर मंगिका उस पर आसक्त हो गई और काम के बाणों द्वारा वेधी जाने लगी। तब उसने चोर से कहा कि मैं आपकी सेवा करना चाहती हूँ। चोर ने उसके इन वचनों को सुनकर लज्जित होते हुए कहा कि तुम्हारा पति सहस्रभट है, इसलिये मैं डरता हूँ। इस पर मंगिका ने कहा कि उसको तो मैं मार डालूँगी, तुम कुछ भी भय मत मानो। यह सुन चोर ने अपने मन में विचारा कि जो स्त्री अपने रूपशाली, यौवनशाली और धनाढ्य पति को भी मारने के लिए तैयार है, वह दुष्टा मुझे क्या छोड़ेगी? इतने में सहस्रभट तालाब पर से कमलों को लेकर आया और मुनिराज के चरणों को पूजकर ज्यों ही नमस्कार करने को नम्र हुआ त्यों ही मंगिका ने खींचकर जल्दी से उसके गले पर तलवार चलाना प्रारम्भ किया कि पीछे से चोर ने आकर तलवार पकड़ ली। बाद में वज्रायुध तो मंगिका को लिवाकर अपने घर को चला आया और चोर धन को लेकर अपने भाइयों के पास उज्जैनी चला गया। वहाँ उसके लाये हुए द्रव्य के उसके भाइयों ने सात हिस्से किये। उनको देखकर विरक्तधी भद्र नामक चोर बोला कि मुझे धन से कुछ भी प्रयोजन नहीं है। मैं धन नहीं चाहता हूँ। तब उसके भाइयों ने पूछा कि हे भ्रात:! इसका कारण क्या है? उसने शमशान भूमि का सारा वृत्त कह सुनाया। तब वे सभी वैराग भाव को प्राप्त हुए और दिगम्बर जिन दीक्षा लेकर तप करने लग गये। किसी

दूसरे दिन वे सभी धीरवीर चर्यामार्ग के अनुसार आहार लेने को निकले और क्रम-2 से अन्य-2 घरों को छोड़ते हुए वे जब मंगिका के घर के नजदीक पहुँचे तब मंगिका के पति वज्रायुध ने उन्हें पड़गाहा। जब वज्रायुध ने उनके तप का कारण पूछा तब उन मुनिजनों ने आहार के बाद शमशान भूमि का सारा हाल कह सुनाया। वज्रायुध ने जब वह हाल सुना तब वे विरक्त हो गये और दीक्षा लेकर तप करने लगे। इस प्रकार वज्रायुध का कथानक पूरा हुआ।

हे राजन्! नंद मुनि के तप का हेतु यशोधर महाराज का चरित है। यह सचेता पुरुषों के चित्त को चुराने में समर्थ है - यह सज्जन पुरुषों के चित्त को अपनी तरफ खींच सकता है।

हे आर्य! तुमने इन आठ मुनियों के, जो जगत द्वारा स्तूयमान हैं, व्रती हैं, चरित और नामों को पूछा था उन सबका मैं व्याख्यान कर चुका। श्रावक धर्म एवं मुनिधर्म संसार से भयभीत कराकर वैराग्य को बढ़ाने वाला है, इसलिए कुशाग्रबुद्धि बुद्धिमानों को उसका अवश्य श्रवण करना चाहिए और उसके अनुसार यथाशक्ति चलने में भी प्रयत्न रहना चाहिए। इस प्रकार प्रभंजन गुरु के चरित में यशोधर चरित की पीठिका की रचना में चतुर्थ सर्ग पूरा हुआ।

पंचम सर्ग

अनन्तर प्रभंजन राजा ने श्रीवर्द्धन मुनि को नमस्कार कर पूछा कि भगवन्! शीलव्रत भंग करने से स्त्रियों को कौन से पाप का बंध होता है? मुनिराज ने कहा कि – हे भव्योत्तम! शील के भंग करने से जीवों को उस पाप का बंध होता है, जिससे कि उन्हें संसार समुद्र में पड़कर भारी यातना भोगनी पड़ती है। हे राजन्! शील कुल से भी उत्तम हैं क्योंकि बिना शील के कोई कुल, कुल ही नहीं कहला सकता है। शीलधारी नर–नारियों की देव भी आ–आकर पूजा करते हैं, चाहे वे किसी भी कुल के क्यों न हों और जिसने उस शील का मन द्वारा भी एक बार भंग कर दिया, उसको असह्य और दुर्लंघ्य नरकों के भारी–2 दुःख सहने पड़ते हैं। हे राजन्! जो अपने शील–रत्न को खोकर पृथ्वीतल पर विहार करता है, वह अवश्य ही छठी पृथ्वी तक के दुःखों का पात्र हो जाता है। नरक के दुःखों का जैसा कुछ वर्णन जैनशास्त्रों में किया है उसी के अनुसार मैं कुछ वर्णन करता हूँ, तुम सावधान होकर सुनो।

नरक के उत्पत्ति स्थान दो तरह के हैं – एक मिष्टपाकमुख अर्थात् तवा, कड़ाही के मुँह समान। दूसरे ऊँट के मुँह के आकार वाले उसमें नारकी जब पेदा होते हैं, तब उनके पैर तो ऊपर को होते हैं और मुख नीचे को। उनके तीव्र पाप का उदय होता है, अतएव उन्हें भारी वेदना होती है, जिससे वे बहुत आतुर रहा करते हैं। वे ज्यों ही अपने शरीर को यथोचित पूर्ण कर भूमि पर गिरते हैं, त्यों ही वहाँ की तीव्र उष्णता को न सह सकने के कारण फिर ऊपर को उछलते हैं और आकर फिर भी उसी गर्मी में गिरकर उसी तरह से भुनते हैं, जिस तरह तपते लोहे के तवे पर डाला हुआ तिली का दाना, पहले तो उछलताकूदता है, बाद में उसी तवे पर गिरकर झुलस जाता है। नारकियों के रूप भारी भयंकर–भयावने होते हैं, वे दुर्वर्णा होते हैं, क्रूर होते हैं, उनके शरीर से भारी दुर्गन्धि निकला करती है, उनका हुंडक संस्थान–आकार होता है, वे

नपुंसक होते हैं। उनके वचन व्रजोपम होते हैं। एक नारकी को पैदा हुआ देखकर उसी समय दूसरे अधम नारकी विभंगज्ञान से पूर्व भव के बैरों को जान-2 कर उसे मारने को चारों तरफ से दौड़ आते हैं। उनको दौड़े आये देखकर अन्य-2 नारकी उन्हें भी मारने को दोड़ते हैं, तथा मुद्गर, मूशल, शूल आदि हथियारों से मारते हैं, पर वहाँ उनकी कोई रक्षा नहीं करता-वे वहाँ अनाथ हैं। दूसरे आकर उनको भी मारते हैं, अग्नि में ड़ालकर खूब मुर्मुर पकाते हैं-कड़ाहों में डालकर औट डालते हैं। विक्रिया से मनुष्य के आकार वज्रमय दीर्घ खंभे बनाते हैं और उन्हें अग्नि से खूब तपाकर फिर उनसे नारकियों को चिपटा देते हैं। मानों अग्नि ही जल रही है, ऐसी गर्म शय्याओं को बनाकर उन पर खूब कीलें चुभा देते हैं। फिर उन पर (परनारी रत) नारकियों को लिटाते हैं। उस समय वे बहुत हा-हाकार करते हैं, पर कोई भी उनकी रक्षा नहीं करता है। एक नारकी दूसरे नारकी के शरीर को बसूले से छीलछाल डालते हैं और ऊपर से महा विषैली-2 चीजों का लेप कर फिर नमक से सींच देते हैं। कई एक नारकियों को तो दूसरे नारकी जमीन खोदकर गाड़ देते हैं और ऊपर से मिट्टी पूर देते हैं किन्हीं-2 नारकियों का श्वासोच्छवास बिल्कुल रोक दिया जाता है जिससे बहुत दुःखी हो वे जमीन पर गिर जाते हैं। उस समय उन्हें बहुत से कुत्ते, काक, बक, मृग, गवेधुक, सिंह, व्याघ्र, वृक, सर्प, सरभ, आखु, शूकर आदि पशुपक्षी आ-आकर चूँट-2 कर खा जाते हैं। जिसका जल विष के समान है, ऐसी उग्र वैतरणी नदी में अवगाहन करा देते हैं। वहाँ भी मत्स्य वगैरह जीव आ-आकर शरीर को खाने लग जाते हैं जिससे नारकियों को भारी विकलता पैदा होती है तथा उस नदी के दुर्गंधित जल को पिला देते हैं, जिसके पीने मात्र से ही ऐसा दुःख होता है मानों प्राण ही निकले जा रहे हैं। इन दुःखों को न सह सकने के कारण वे नारकी भागते हैं और विश्राम की इच्छा से पर्वत के शिखरों पर चढ़ जाते हैं वहाँ पर भी उन्हें सिंह, व्याघ्र, गीदड़, आदि पशु खाने को दौड़ते हैं, जिससे वे भारी विकल (दुःखी) होते हैं। यदि वे वन में चले जाते हैं तो वहाँ तलवार की धार की तरह तीक्ष्ण वृक्षों के पत्तों से पहिले तो शरीर के खण्ड-2 होते हैं, दूसरे दंश आदिक आ-आकर शरीर को खाने लग जाते हैं। अधिक क्या कहें शील भंग करने वाले जीवों को इससे भी कहीं अधिक-2 वेदनाएँ भोगनी पड़ती हैं। गन्थकार कहते हैं

कि जो नारकियों को सुख दे सके, ऐसा न कोई नरक में द्रव्य है, न क्षेत्र है, न स्वजन है, और न स्वभाव–अपना कोई परिणाम ही है।

इस प्रकार शील को भंग करने वाला जीव छठी पृथिवी में बाईस सागर तक घोर दु:खों को भोगकर वहाँ से निकलता है, और स्वयंभूरमण समुद्र में जाकर महामत्स्य उत्पन्न होता है। वहाँ भी दु:खों से संतृप्त होता हुआ बड़े–2 पापों का अर्जन करता है, और वहाँ से निकल तीव्रतर यातना वाले सातवें नरक में जाता है। सातवें नरक में भी पूर्वोक्त दु:खों को तेतीस सागर तक भोगता है, और बाद में वहाँ से निकल कर क्रूर परिणामी सिंह होता है। सिंह पर्याय में भी अपने क्रूर भावों से पापों को इकट्ठा कर मरता है, और उस धूमप्रभा नामक पाँचवीं पृथिवी में जाकर नारकी होता है जहाँ पर रहना बहुत दु:ख प्रद है। वहाँ पर तीव्र दु:खों को सहते–2 जब सत्रह सागर पूरे कर लेता है, तब वहाँ से निकल उरग–सांप होकर फिर चौथी पृथिवी में जाकर उत्पन्न होता है। वहाँ पर भी अत्यन्त क्रूर भावों से – भारी दु:खों से दस सागर के काल को पूरा करने के बाद वहाँ से निकलकर पक्षी होता है। एवं मरकर फिर बालुका प्रभा पृथिवी में जन्म लेता है। वहाँ सात सागर पूरे करता है और फिर सरीसृत जाति का सर्प पैदा होता है। ग्रन्थकार कहते हैं कि शीलभंग से क्या–2 दु:ख नहीं होते? सरीसृप अवस्था से दु:खों के साथ मरकर दूसरी पृथिवी में जन्म लेता है। वहाँ तीन सागर की आयु को भारी दु:खों के साथ पूरा करता है और वहाँ से निकलकर असंज्ञी जीव होता है। वहाँ से भी मरण कर दु:खों की खानिरूप महिली पृथिवी में जाता है और वहाँ हजारों दु:खों को भोगता है। वहाँ से निकल कर एक सागर काल तक नाना तिर्यच योनियों में ही परिभ्रमण करता रहता है, कुत्ता होता है, कुत्ते से फिर कुत्ती होता है, घूक, और आखू (चूहा) होता है, बरड़, जलक्राक, श्रृगाल आदि नाना पशु पक्षियों में जन्म लेता है। इस प्रकार भ्रमण करता हुआ यह जीव शीलभंग के पाप से दु:सह–2 दु:खों को भोगता है। यदि किसी प्रकार मनुष्य भी हो जाता है तो कुणप, कुब्ज, वामन, अंधा, गूँगा, दरिद्री और परसेवी होता है तथा ऐसा होता है जो कोड़ों से पीटा जाता है और जंजीरों से जकड़ा जाता है। फिर भी हमेशा नीच–2 कर्मों को ही करता है। शील को भंग करने से जिन्होंने दु:ख पाया है ऐसे सद्व्रतनिष्ठा मंगिका के सिवाय भवघोष आदि की स्त्रियों के

बहुत से उदाहरण मिलते हैं। इनको आदि लेकर दुःखों की संतान के वितान से जिनका मन डरता है उन सज्जनों को प्रयत्न के साथ शीलव्रत का पालन बड़ी श्रद्धा से करना चाहिए। यह शील मनुष्य का भूषण है, संयम का साधन है, इसके बिना और-2 कारणों के होते हुए भी जीव को सुख नहीं मिल सकता-उनकी आपदा नहीं टल सकती। शील के बिना अच्छे कुल और रूप सम्पत्ति की प्राप्ति नहीं होती, तथा सुंदर पुत्र आदि की प्राप्ति भी नहीं होती। इस प्रकार श्री वर्द्धन मुनि के मुखचन्द्र से झरे हुए धर्मामृत का पानकर प्रभंजन महाराज और उनके पुत्र सरल महाराज दोनों ही दिगम्बर मुनि हो गये और घोर तपस्या करने लगे। बाद में वसुधातलपर विहार करते हुए ये शान्तचित्त महायोगीधर इस उज्जैनी नगरी में आये हैं। इस प्रकार श्रीवर्द्धन मुनिराज ने पूर्णभद्र राजा के दो प्रश्नों का उत्तर देकर तीसरे प्रश्न (मेरा इनके ऊपर भारी स्नेह हो रहा है, इसका कारण क्या है?) का उत्तर देना प्रारंभ किया।

भरतक्षेत्र में बसंत तिलकापुर नगर है। वहाँ के राजा बसंत तिलक थे, उनकी रानी बसंत तिलका थी, जो कि सती थीं। उसी पुर में एक कोदण्ड नामक ब्राह्मण था, उनकी वल्लभा का नाम कमला था तथा उनके श्री और सम्पत् नाम की दो मनोहारिणी पुत्रियाँ भी थीं। कुछ दिनों में जब कोदण्ड मर गया तथा कमला ब्राह्मणी जल के बिना कमलिनी की तरह बहुत विकल हुई और स्वभाव से दरिद्रा वह पति के वियोग होने पर दूसरों से माँग-2 कर अपनी पुत्रियों का भरण पोषण करने को उद्यत हुई। एक दिन श्री ने अपनी फूफी-पिता की बड़ी बहिन (बुआ) को गाली दी, जिससे कि उसने श्री को बहुत भर्त्सना कर घर से निकाल दिया। वह नगर से बाहर गई और वहाँ उद्यान में उसने बैठे हुए एक दमधर नामक यति को देखा। वह उनके पास गई और उनसे अपनी दरिद्रता के दूर करने का साधन उपाय पूछा। यति ने उसको अणुव्रत धारण करने में असमर्थ जानकर कहा कि हे सद्बुद्धे! मैं दरिद्रता के नष्ट होने का कारण बताता हूँ तुम सावधान होकर सुनो। श्री पंचमी का उपवास करने से जीवों को इष्ट फल की प्राप्ति होती है, इसलिए तुम अपने मन को निराकुल करके पंचमी के व्रत को करो। उस पंचमी व्रत के फल को सर्वथा तो तीर्थंकर (सर्वज्ञ) के सिवाय दूसरा कोई नहीं कह सकता, पर मैं अपनी मति के अनुसार कुछ हिस्सा कहता हूँ उसे हे वत्से! तुम स्थित

चित कर सुनो। पंचमी के दिन व्रत करने से बहुत लक्ष्मी मिलती है, महान् सुख होता है, खूब भोग सम्पत्ति प्राप्त होती है, उच्च कुल मिलता है, रूप-लावण्य मिलता हे, सुभगता, शुभ नाम, आरोग्य, चिरजीविता, निराकुलता और निष्पापता की प्राप्ति होती है। पंचमी के व्रत के महात्म्य से कभी शोक नहीं होता, ताप और दुःख नहीं होता, संसार भर में सबसे श्रेष्ठ निर्लोभता प्राप्त होती है, और जो शरण में आवे उसको अपनाने का भाव पेदा होता है। इस व्रत के महात्म्य से आत्मा स्वार्थी नहीं बनता है। जो इस व्रत को करता है उसको इष्ट का समागम और अनिष्ट का वियोग तो सदा ही हुआ करता है। उसके स्वाभाविक प्रीति और स्वाभाविक ही गुणों की प्राप्ति होती है। वह आत्मा किसी के आधीन नहीं रहता-स्वतंत्र हो जाता है। इस व्रत के अनुष्ठायी आत्मा को सुन्दर पुत्र और सुन्दरी पुत्रियों की प्राप्ति होती है। तथा उसको पुत्र की वधू और जमाई एवं नाती, पोते और नन्द वगैरह सभी मनोरम मिलते हैं। हंस जैसी गति, कोकिल जैसी मधुर वाणी और शुभ व्यापार तथा शुभ परिणामों की प्राप्ति होती है। निरन्तर धर्मात्मा और धर्म का समागम होता है। रहने को अच्छे-अच्छे महल मिलते हैं, शयन करने के लिए सुन्दर-2 शय्यायें मिलती हैं, खाने-पीने को मान सम्मान पूर्वक उत्तमोत्तम भोजन व पेय पदार्थ और पहिनने को नाना भूषण मिलते हैं। अच्छी-2 गंध, अच्छे-2 आवास एवं अच्छे-2 वस्त्र और विलेपन मिलते हैं। हाथी, घोड़े, रथ, यान, वाहन, पदाति आदि विभव भी सब सुखद ही प्राप्त होता है। इस व्रत के प्रभाव से भामण्डल, इन्दुछत्र, चन्द्र, चमर वीजन (ढोरना) जंपान, शिविका और दोलायायित्व ये सभी लीलामात्र में प्राप्त हो जाते हैं। जगत् के नेत्रों को आनन्द दायित्व, संसार भर का स्वामित्व, सत्कीर्ति, सुवर्ण के समान शरीर की कान्ति और मंद-2 चलाना, दयाभाव, क्रोधराहित्य, अवंचकता, निर्लोभपना, गर्वराहित्य आदि सब बातें प्राप्त होती हैं। इस व्रत वाले को कभी आधि-मानसिक दुःख नहीं होता है, चन्द्रमा की तरह सुन्दर सुख मिलता है, तथा उसका आत्मा निर्मलता को प्राप्त होता है, न्याय से कभी भी पीछे नहीं हटता। श्रुतस्कंध की भक्ति से चक्रवर्ती, बलदेव, नारायण, इन्द्र, अर्हन्त, विद्याधर आदि के योग्य सुखों की प्राप्ति होती है। इस पंचमी व्रत के प्रभाव से जो कुछ भी अभीष्ट हो वह सभी सिद्धि को प्राप्त हो जाता है-हाथ में आ जाता है। अब

और बढ़ाकर कहने की कोई आवश्यकता नहीं है। जिनेन्द्र देव ने पंचमी व्रत के तीन भेद बताए हैं–जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट। जघन्य का काल पाँच माह, मध्यम का काल पाँच वर्ष और उत्कृष्ट का काल पाँच वर्ष और पाँच महीना है। इस प्रकार मुनि के वचनों को सुनकर श्री ने जघन्य पंचमीव्रत को ग्रहण किया और हर्षित होती हुई अपने घर को चली आई। सच है कि इष्ट लाभ से जीवों को हर्ष होता ही है। वहाँ उसकी माता और बहिने ने भी उसके कहे अनुसार व्रत ग्रहण कर लिया और तीनों ही संतुष्ट होती हुई भले प्रकार व्रत को करने लग गईं और मरणकर पंचमीव्रत के प्रभाव से मनुष्य गति को प्राप्त हुई। ग्रन्थकार कहते हैं कि जब पंचमी व्रत के प्रभाव से आप्तता (देवपना) भी प्राप्त हो जाता है तब मनुष्यगति की प्राप्ति होने में आर्य पुरुषों को आश्चर्य नहीं करना चाहिए। मुनिराज कहते हैं कि कमला का जीव प्रभंजन, श्री का जीव सरल और संपत् का जीव तुम पूर्णभद्र हुए हो और जिसको श्री ने गाली दी थी वह सुभद्रा सम्पत् के स्नेह से तुम्हारी बहिन होकर प्रभंजन की पृथिवी नाम की प्रिया हुई और उसने पूर्व भव में बैर के कारण पति और पुत्र दोनों का विनाश किया। इसलिए पंडित पुरुषों को कभी भी किसी से बैर नहीं करना चाहिए। इस प्रकार श्रीवर्द्धन मुनिराज के मुख से प्रभंजन आचार्य के चरित को सुनकर पूर्णभद्र महाराज और उनका पुत्र भानु दोनों दिगम्बर हो गये और तप करने लगे।

इसके बाद शील से विभूषित, गुणरूपी रत्नों के कोश, समता रूपी चन्द्र के लिए क्षीरसागर के तुल्य, षट्कायिक जीवों के प्रतिपालक, पंच पाप के सर्वथा त्यागी, यथा जातरूप (नग्नरूप) के धारी, पंच समिति और तीन गुप्ति के पालन करने वाले, कोष्टबुद्धि आदि बुद्धिओं के स्वामी, श्रुतांबुधि के पार को प्राप्त, सर्वऋद्धियों से युक्त, कुकथा आदि से विरक्त, कोई पक्षोपवासी, कोई मासोपवासी, कोई चन्द्रायण व्रतधारी, कोई आचाम्लचारी, विमान मेरु पंक्ति आदि विथियों के आलय, कारित अनुमित आदिपिंड़ आदि के त्यागी, इनको आदि लेकर और-और गुणों से भी युक्त वे सब मुनीश्वर नाना देशों में विहार करते-2 अतिशय शोभाशाली पुरताल पर्वत के पास पहुँचे। इस पर्वत के कोटि पाषणतुल्य, सुवर्ण की कसौटी के समान गौरवशाली, सफेद सरसों के समान निर्मल, मणियों से खचित कूट पर श्रीवर्द्धन योगीश्वर ने भले प्रकार

अपने शरीर का त्याग कर दिया और आत्म बलधारी सोलहवें स्वर्ग में देवपद को प्राप्त हुए। जो रत्नत्रय मोक्ष सुख का दाता है, ज्ञान को दीप्त करने वाला है, परमातिशय प्राप्त बोधिका सदन है, उस रत्नत्रय का आराधन कर तीन लोक द्वारा पूजे जाने वाले निर्मल तीर्थकर नामकर्म को बाँधकर तथा उपशम भाव को प्राप्त कर श्रीप्रभंजन गुरु भी सोलहवें अच्युत स्वर्ग के सुख के भोक्ता हुए एवं रत्नत्रय और तपकर युक्त, पूर्णभद्र यतीन्द्र भी निर्दोष गणधर संज्ञा के साधक नाम कर्म को अपने तप द्वारा बाँधकर निर्दोष सोलहवें स्वर्ग में देव हुए। जगन्मान्य कामारि जंभाराति (इन्द्र नमस्कृत, शान्तियुक्त शरीर वाले श्रीभानु, शुंद आदि मुनि भी सरल सुंधाद्रि पर्वत के सुन्दर तल में अपने शरीर को त्याग कर सबके सब स्वर्ग के देवों की सुख स्पमत्ति को प्राप्त हुए। समिद्ध-दीप्त-शुद्ध शरीरधारी, दिव्य अलंकार, दिव्य लेपन, दिव्य आहार, दिव्य गति, दिव्य माल्यगंध और दिव्य वस्त्रों के धारी तथा जिनेन्द्र की वन्दना स्तुति के कर्ता, महान् गुणों के भंडार और संसार से भीरु होकर भी नानाप्रकार के मनोहर आत्मीय भोगों के भोक्ता वे सब मुनीश्वर हमारी आत्मलक्ष्मी की पुष्टि करें और हमें हमेशा सुख देवें।

इस प्रकार श्रीप्रभंजन गुरु के चरित में यशोधर चरित की पीठिका की रचना में पंचम सर्ग पूरा हुआ।

।।समाप्तोऽयं ग्रन्थः।।

प. पू. अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, दीक्षा सम्राट, आचार्य श्री 108 वसुनंदी जी महाराज द्वारा रचित, संपादित साहित्य

1. निजअवलोकन
2. देषभूषण कुलभूषण चरित्र
3. हमारे आदर्श
4. चित्रसेन पद्मावती चरित्र
5. नंगानंग कुमार चरित्र
6. धम्म रसायण
7. मौनव्रत कथा
8. सुदर्शन चरित्र
9. प्रभंजन चरित्र
10. सुरसुन्दरी चरित्र
11. जिनश्रमण भारती
12. सर्वोदयी नैतिक धर्म
13. चारुदत्त चरित्र
14. करकण्डु चरित्र
15. रयणसार
16. नागकुमार चरित्र
17. सीता चरित्र
18. योगामृत भाग–1
19. योगामृत भाग–2
20. आध्यात्मतरंगिणी
21. सप्त व्यसन चरित्र
22. वीर वर्धमान चरित्र भाग–1
23. वीर वर्धमान चरित्र भाग–2
24. भद्रबाहु चरित्र
25. हनुमान चरित्र
26. महापुराण भाग–1
27. महापुराण भाग–2
28. योगसार–भाग–1
29. योगसार–भाग–2
30. भव्य प्रमोद
31. सदार्चन सुमन
32. तत्त्वार्थ सार
33. कल्याण कारक
34. श्री जम्बूस्वामी चरित्र
35. आराधनासार
36. यशोधर चरित्र
37. व्रतकथा संग्रह
38. तनाव से मुक्ति
39. उपासकाध्ययन भाग–1
40. उपासकाध्ययन भाग–2
41. रामचरित्र भाग–1
42. रामचरित्र भाग–2
43. नीतिसार समुच्चय
44. आराधना कथा कोश भाग–1
45. आराधना कथा कोश भाग–2
46. आराधना कथा कोश भाग–3
47. दशामृत (प्रवचन)
48. सिन्दूर प्रकरण
49. प्रबोध सार
50. शान्तिनाथपुराण भाग–1
51. शान्तिनाथ पुराण भाग–2
52. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार
53. सम्यक्त्व कौमुदी
54. धर्मामृत भाग–1
55. धर्मामृत भाग–2
56. पुण्य वर्द्धक
57. पुण्यास्रव कथा कोश भाग–1
58. पुण्यास्रव कथा कोश भाग–2
59. चौंतीस स्थान दर्शन
60. अकंपमती
61. सार समुच्चय
62. दान के अचिन्त्य प्रभाव
63. पुराण सार संग्रह भाग–1
64. पुराण सार संग्रह भाग–2
65. आहार दान
66. सुलोचना चरित्र
67. गौतम स्वमी चरित्र
68. महीपाल चरित्र
69. जिनदत्त चरित्र
70. सुभौम चक्रवर्ती चरित्र
71. चेलना चरित्र
72. धन्यकुमार चरित्र
73. सुकुमाल चरित्र
74. कुरलकाव्य
75. धर्म संस्कार भाग–1
76. प्रकृति समुत्कीर्तन
77. भगवती आराधना
78. निर्ग्रंथ आराधना
79. निर्ग्रंथ भक्ति
80. कर्मप्रकृति
81. पूजा–अर्चना
82. नौ–निधि
83. पंचरत्न
84. व्रताधीश्वर–रोहिणी व्रत
85. तत्त्वार्थस्य संसिद्धि
86. रत्नकरण्डक श्रावकाचार
87. तत्त्वार्थ सूत्र
88. छहढाला (तत्त्वोपदेश)
89. छत्रचूड़ामणि (जीवंधर चरित्र)
90. धर्म संस्कार भाग–2
91. गागर में सागर
92. स्याति की बूँद
93. सीप का मोती (महावीर जयन्ती प्रवचन)
94. भावत्रय फलप्रदर्शी
95. सच्चेसुख का मार्ग
96. तनाव से मुक्ति–भाग–2

97. कर्म विपाक
98. अन्तर्यात्रा
99. सुभाषित रत्न संदोह
100. अरिष्ट निवारक विधान संग्रह
101. पंचपरमेष्ठी विधान
102. श्रीं शान्तिनाथ भक्तामर, सम्मेदशिखर विधान
103. मेरा संदेशा
104. धर्म बोध संस्कार 1, 2, 3, 4
105. सप्त अभिशाप
106. दिगम्बरत्व : क्या, क्यों, कैसे?
107. जिनदर्शन से निजदर्शन
108. निश भोज त्याग : क्यों?
109. जलगालन : क्या, क्यों, कैसे?
110. धर्म : क्या, क्यों कैसे ?
111. श्री महावीर भक्तामर स्तोत्र
112. मीठे प्रवचन 1, 2, 3, 4
113. कल्याणी
114. कलम–पट्टी बुद्धिका
115. चूको मत
116. खोज क्यों रोज–रोज
117. जागरण
118. णंदिणंद सुत्तं
119. जय बजरंग बली
120. शायद यही सच है
121. डॉक्टरों से मुक्ति
122. आ जाओ प्रकृति की गोद में
123. भगवती आराधना
124. चैन की जिन्दगी
125. धर्मरत्नाकर
126. हाइकू
127. स्वप्न विचार
128. क्षरातीत अक्षर
129. वसुनंदी उवाच
130. चन्द्रप्रभ चरित्र
131. चन्द्रप्रभ विधान
132. कोटिभट्ट श्रीपाल चरित्र
133. महावीर पुराण
134. वरांग चरित्र
135. रामचरित्र (पुनः प्रकाशित)
136. विषापाहार स्तोत्र
137. पाण्डव पुराण
138. हीरों का खजाना
139. तत्त्वभावना
140. सम्राट चन्द्रगुप्त
141. जीवन का सहारा
142. धर्म की महिमा
143. जिन कल्पि सूत्रम्
144. विद्यानंद उवाच
145. सफलता के सूत्र
146. तत्त्वज्ञान तरंगनी
147. जिन कल्पि सूत्रम्
148. दुःखों से मुक्ति
149. णमोकार महार्चना
150. समाधि तंत्र
151. सुख का सागर चालीसा
152. पुरूषार्थ सिद्धीउपाय
153. सुशीला उपन्यास
154. तैयारी जीत की
155. बोधि वृक्ष
156. शान्तिनाथ विधान
157. दिव्यलक्ष्य
158. आधुनिक समस्याऐं प्रमाणिक समाधान
159. भरतेश वैभव
160. वसुऋद्धि
161. संस्कारादित्य
162. मुक्तिदूत के मुक्तक
163. श्रुत निर्झरी
164. जिन सिद्धांत महोदधि
165. उत्तम क्षमा
166. मान महा विष रूप
167. तप चाहें सुर राय
168. जिस बिना नहिं जिनराज सीजे
169. निज हाथ दीजे साथ लीजे
170. परिग्रह चिंता दुःख ही मानो
171. रंचक दगा बहुत दुःख दानी
172. लोभ पाप को बाप बखाना
173. सतवादी जग में सुखी
174. उत्तम ब्रह्मचर्य
175. पार्श्वनाथ पुराण
176. गुण रत्नाकर
177. नारी का धवल पक्ष
178. खुशी के आंसू
179. आज का निर्णय
180. गुरू कृपा
181. तत्त्व विचारो सारो
182. अजितनाथ विधान
183. त्रिवेणी
184. आईना मेरे देश का
185. न मैं चुप हूँ न गाता हूँ
186. मूलाचार प्रदीप
187. न पिटना बुरा है न मिटना
188. गुरूवर तेरा साथ
189. सद्गुरू की सीख
190. णदिगंद सुनं

प्रेम में :–
फर्श से अर्श तक
स्वास्थ बोधामृत
कुछ कलियाँ कुछ फूल
प्रभाती संग्रह
आदिनाथ विधान
मुनिसुव्रतनाथ विधान
नेमिनाथ विधान
नवग्रह विधान
आराधना समुच्चय
आदि

प. पू. आचार्य श्री 108
विज्ञानंद जी मुनिराज

कृपया ध्यान दें

प. पू. आचार्य श्री 108
वसुनन्दी जी मुनिराज

आचार्यों के अनुसार जो ज्ञान के साधन धार्मिक पुस्तकें, शास्त्र आदि को जो पढ़ता है तथा दूसरों को पढ़ने के लिए देता है उसके ज्ञानावरणी कर्म का तीव्र क्षयोपक्षम होता है जो कि आगे चलकर केवल ज्ञान में कारण बनता है। अतः धार्मिक पुस्तकों और शास्त्र आदि को पढ़ाने के बाद दूसरों को पढ़ने के लिए दें अथवा मंदिर जी में रख दें ताकि दूसरे भी उसका लाभ ले सकें।